डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में

मुस्लिम कट्टरवाद

एस. के. अग्रवाल

सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली

द्वीतीय संस्करण – 2000 ई.

डा० अम्बेडकर की दृष्टि में मुस्लिम कट्टरवाद

एस. के. अग्रवाल

सुरुचि प्रकाशन
नयी दिल्ली-११००५५

प्रकाशक : सुरुचि प्रकाशन
(सुरुचि संस्थान का प्रकाशन विभाग)
देशबन्धु गुप्त मार्ग, झण्डेवाला,
नई दिल्ली–110055

द्वितीय संस्करण : युगाब्द 5101,
(विक्रमी संवत् 2056)
(2000 ई०)

मूल्य : सामान्य संस्करण 12.00 रुपये
पुस्तकालय संस्करण 25.00 रुपये

मुद्रक : ग्राफिक वर्ल्ड, कूंचा दखनी राय,
दरियागंज, नई दिल्ली–110002

प्रकाशकीय निवेदन

डा० भीमराव अम्बेडकर अपने कर्तृत्व से बहुत महत्त्वपूर्ण नेता बन गये, परन्तु अंग्रेजी में लिखे होने के कारण उनके विचारों से समाज परिचित नहीं हो सका। अंग्रेजी तक पहुँच रखने वाले कथित प्रगतिशील बुद्धिजीवियों ने अपने अनुकूल न बैठने वाले उनके विचार जानबूझकर जनता को नहीं बताये। इस कारण जितना भ्रम उनके बारे में फैला है, उतना किसी भी अन्य आधुनिक महत्त्वपूर्ण विचारक के बारे में नहीं फैला।

विभिन्न विषयों पर डा० अम्बेडकर के विचार थे क्या, यह उन लोगों में से भी अधिकांश को ठीक से पता नहीं है जो स्वयं को 'बाबा साहेब' के अनुयायी मानते हैं। इसी कारण निहित स्वार्थी तत्त्व उन्हें ऐसी-ऐसी बातें भी सिखा-पढ़ा देते हैं जो डा० अम्बेडकर के विचारों से बिल्कुल उल्टी होती हैं। ऐसे ही तत्त्वों में से कुछ तो डा० अम्बेडकर का नाम लेकर हिन्दुत्व का विरोध करते दिखाई देते हैं, जबकि कुछ अन्य दलित-मुस्लिम मोर्चा बनाने की बात करते हैं। ऐसे दुष्प्रचार से प्रभावित लोग यदि हिन्दू समाज में एकता की कमी और कट्टरपन्थी मुस्लिम धर्मान्धता से देश के सामने खड़े संकट के बारे में डा. अम्बेडकर की घनघोर चिन्ता से परिचित होंगे तो उनकी आँखें खुल जायेंगी। समाज में जातीय भेदभाव समाप्त करने के लिए सतत् आन्दोलन चलाते हुए भी, भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रति डाक्टर साहब के हृदय में जितनी गहरी श्रद्धा थी और भारत के हितों की रक्षा करने की उन्हें जितनी चिन्ता थी, उसे तो उन्होंने ईसाई मिशनरियों, मुल्ला-मौलवियों और हैदराबाद के निजाम द्वारा दिये गये प्रलोभनों को ठोकर मारकर बौद्ध बनने का निश्चय करते हुए भी प्रकट किया था। उनकी देशभक्ति प्रेरणा लेने योग्य थी।

मुस्लिम कट्टरवाद, जिससे मानवतावादी उदार मुसलमान भी त्रस्त हैं, डा. अम्बेडकर के लिए छुआछूत की समस्या से कम नहीं वरन् अधिक ही चिन्ता का विषय था क्योंकि छुआछूत समाज की काया को लग गया एक रोग था जिसे मिटाकर समाज को पुनः स्वस्थ हो जाना था, जबकि कट्टरवादी असहिष्णुता इस्लाम के अनुदार चरित्र का एक आधारभूत सिद्धान्त है। अतएव मुस्लिम कट्टरवाद के सभी पार्श्वों की पर्याप्त छानबीन करके उससे भारत को बचाने के उपाय भी उन्होंने सुझाये।

प्रस्तुत पुस्तक में डा० अम्बेडकर के इन्हीं विचारों का प्रामाणिक संकलन विद्वान् लेखक ने अपनी प्रबुद्ध टिप्पणियों के साथ किया है। आशा है, सुधी पाठक इसे सामयिक और उपयोगी पायेंगे।

अनुक्रम

प्राक्कथन

इस पुस्तक को तैयार करने की प्रेरणा वे उदारवादी मुस्लिम हैं जो मुस्लिम समुदाय के कट्टरवादियों के भारी नियंत्रण के विरुद्ध संघर्ष में पाँव जमाने का प्रयास करते रहे हैं। अपने समुदाय को पिछली शताब्दियों की कट्टरवादी मानसिकता से मुक्त करने के मुस्लिम उदारवादियों के इस संघर्ष ने चाहे कभी एक आन्दोलन का रूप न लिया हो, परन्तु मानव-सभ्यता के वर्तमान दौर में, जब शान्ति और सौहार्द समाप्त होते जा रहे हैं, केवल हर प्रकार के कट्टरवाद की पराजय से ही मानवता उस भयंकर विध्वंस से बच पायेगी जिसका वर्तमान प्रवृत्तियों के बने रहते सामने आना असम्भव नहीं। उदारवादी मुस्लिम अपने संघर्ष में अकेले कुछ नहीं कर पायेंगे। उन्हें देश भर के सम्प्रदाय-निरपेक्ष या पन्थ-निरपेक्ष (सेक्युलर) तत्त्वों के समर्थन की आवश्यकता होगी। परन्तु, दुर्भाग्यवश, देश में कथित धर्म-निरपेक्षतावादी ही कट्टरवाद के सबसे बड़े चाटुकार सिद्ध हुए हैं। किन्तु डा. भीमराव अम्बेडकर इसके देदीप्यमान अपवाद थे। उन्होंने जिस प्रकार अपनी निर्भीक सत्यनिष्ठा से हिन्दू समाज में पैदा हो गयी रूढ़िवादिता का विरोध किया, वैसे ही मुस्लिम समुदाय की मजहबी कट्टरवाद से प्रेरित राजनीति का भी विरोध किया। स्वतन्त्रता के बाद, बुद्धिजीवियों ने डा. अम्बेडकर के इन मुस्लिम-कट्टरवाद-विरोधी विचारों की अनदेखी की है और उन्हें अप्रचारित रखा है। इस पुस्तक का प्रयास है मुस्लिम-कट्टरवाद के बारे में डा. अम्बेडकर के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करना। आशा है कि उदारवादी मुसलमानों और सम्प्रदाय-निरपेक्ष तत्त्वों को डा. अम्बेडकर की भाँति मुस्लिम-कट्टरवाद के विरुद्ध स्पष्ट और दृढ़ रवैया अपनाने में इससे सहायता मिलेगी।

इस पुस्तक के अध्यायों की संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार है :

अध्याय १ — भूमिका : हिन्दुओं द्वारा इस्लाम का आकलन; पंथ-निरपेक्षता; पुस्तक का उद्देश्य; डा. अम्बेडकर द्वारा हिन्दू बुद्धिजीवियों का आह्वान।

अध्याय २ — मुस्लिम लीग की माँग : पाकिस्तान-प्रस्ताव; जिन्ना का भाषण (उद्धरण); हिन्दू-रोष; हिन्दुओं व मुसलमानों के बीच समान विशेषताएँ; दोनों के बीच विभाजक तत्त्व।

अध्याय ३ वैमनस्यपूर्ण रक्त-रंजित इतिहास : गहरी कड़वाहट; मुस्लिम आक्रमणों का लम्बा इतिहास; हिन्दुओं पर अत्याचार और इस्लाम का फैलाव।

अध्याय ४ वैचारिक प्रेरणाएँ; दारुल-इस्लाम व दारुल-हर्ब की अवधारणाएँ; हिजरत; जेहाद; देशबाह्य (इतरदेशीय) नाते; हिन्दुओं के प्रति रुख।

अध्याय ५ हिन्दू-मुस्लिम एकता के निष्फल प्रयास : अंग्रजों के आने से मुस्लिम - स्थिति में परिवर्तन; मुसलमानों से एकता के हिन्दू प्रयास; गांधी जी द्वारा खिलाफत आन्दोलन को समर्थन; एकता-प्रयासों की असफलता; मोपला-हिंसा में हिन्दू-नरसंहार समेत व्यापक दंगे; एकता-प्रयास असफल क्यों?

अध्याय ६ साम्प्रदायिक राजनीति के आयाम : राजनीतिक आक्रामकता; मुसलमानों की बढ़ती माँगें; हिन्दू-दुर्बलताओं से अनुचित लाभ उठाना; राजनीति में हिंसक रीति-नीति (तरीके); कांग्रेस द्वारा मुसलमानों का तुष्टीकरण; इस्लामी अलगाववाद; 'काफिरों' के लिए घृणा; मुस्लिम-राजनीति का ध्येय लोकतंत्र व पंथ-निरपेक्षता नहीं।

अध्याय ७ जनसंख्या का आदान-प्रदान : साम्प्रदायिक सौहार्द पहली आवश्यकता; साम्प्रदायिक सौहार्द के लिए देशों की एकरूपता आवश्यक।

अध्याय ८ यदि पाकिस्तान न बनता; भारत की सुरक्षा का प्रश्न; साम्प्रदायिक सौहार्द का प्रश्न; 'राष्ट्रवादी मुसलमान' साम्प्रदायिक मुसलमानों से कितने भिन्न?

परिशिष्ट हिन्दू-एकता की आवश्यकता : भारत की प्राचीन एकता; राष्ट्रीय पहचान में आयी दुर्बलता; हिन्दू समाज में सुधार आवश्यक; बौद्धमत में दीक्षा; दलितों को परामर्श।

इस पुस्तक को तैयार करने में अपने मित्रों श्री सुधीर कुमार एवं श्री एम. डी. प्रसाद के बहुमूल्य सहयोग के लिए मैं कृतज्ञ हूँ।

—एस. के. अग्रवाल

१

भूमिका

हिन्दुओं का भ्रम और मुस्लिम-रणनीति

पिछले कुछ समय से देश में बढ़ते हिन्दुत्व-भाव ने इस चर्चा को जन्म देना ही था कि इस्लाम, उसकी विचारधारा व राजनीति क्या है, तथा भारत में प्रवेश के लगभग १३०० वर्ष का इसका इतिहास क्या है? हिन्दुत्व-भाव का विकास-क्रम इतिहास में बहुत पुराना है। इस भाव ने सदा ही हिन्दू समाज के सामाजिक सुधार व पुनःशक्तिमान् होने के आन्दोलन खड़े किये हैं। प्रस्तुत कृति का लक्ष्य हिन्दुत्व के इस सकारात्मक पक्ष का विवेचन करना नहीं है, यद्यपि इसकी आवश्यकता है ताकि हिन्दू-द्वेषियों के हिन्दुत्व-विरोधी योजनाबद्ध दुष्प्रचार से फैला भ्रम दूर हो सके।

हिन्दू-मानस में विद्यमान मुस्लिम-विचारधारा के प्रति यह धारणा--कि वह असहिष्णु, आक्रामक व अमेलन-हठी है, अतः सम्प्रदाय-निरपेक्षता व राष्ट्रवाद के आदर्शों के प्रतिकूल है--इतिहास में से पनपी है और पिछले १३०० वर्षों के मुस्लिम राजनीतिक व्यवहार से निकले कड़वे अनुभवों पर आधारित है। हिन्दू-हृदय में स्वतंत्रता से पहले की उस मुस्लिम राजनीति की स्मृति अभी धुँधली नहीं हुई है जिसकी परिणति एक अलग मुस्लिम-राष्ट्र पाकिस्तान की माँग और मातृभूमि के विखण्डन के साथ बर्बर रक्तपात एवं अमानवीय दुर्व्यवहार में हुई थी।

संविधान-निर्माता डॉ० भीमराव अम्बेडकर सरीखे पन्थ-निरपेक्ष विद्वान् की भी मुस्लिम-विचारधारा के प्रति यही धारणा थी, जिसे उन्होंने अपनी पुस्तक 'थौट्स ऑन पाकिस्तान' (१९४१) में प्रस्तुत किया। यह पुस्तक बाद में दूसरे संस्करण में 'पाकिस्तान ऑर पार्टिशन ऑफ इंडिया' नाम से १९४५ में प्रकाशित की गयी। इसी दूसरे संस्करण को हाल ही में डॉ० अम्बेडकर के संग्रहीत वाङ्मय के आठवें भाग के रूप में प्रकाशित किया गया है।

इस पुस्तक में डॉ० अम्बेडकर ने मुस्लिम लीग द्वारा उठायी गयी पाकिस्तान की माँग से उभरे विभिन्न प्रश्नों (मुद्दों) का विश्लेषण किया है। इन मुद्दों पर हिन्दू व मुस्लिम, दोनों दृष्टिकोणों का विस्तार से वर्णन करने के साथ ही उन्होंने

हिन्दू-मुस्लिम कटुता की समस्या पर अपनी निष्पक्ष विवेचना प्रस्तुत की है। वे इस बात से आश्वस्त थे, यद्यपि इससे हिन्दू दुःखी हुए, कि मुस्लिम समुदाय की सोच को देखते हुए हिन्दुओं और मुसलमानों का एक ही राष्ट्र के अंग के रूप में बने रहने का कोई व्यावहारिक आधार नहीं है। आज के संदर्भ में पाकिस्तान की माँग तो रही नहीं, परन्तु हिन्दू-मुस्लिम क़टुता बनी हुई है, बल्कि, सत्तासीन वर्ग की नकली 'धर्म-निरपेक्षता' के कारण समस्या और भी जटिल हो गयी है।

क्या हमारे सांविधानिक ढाँचे के स्तम्भ के रूप में पन्थ-निरपेक्षता का लक्ष्य केवल इतना है कि एक पन्थ-निरपेक्ष राज्य की स्थापना हो, जो मजहबी अल्पसंख्यकों के अपनी कट्टरता में धँसे रहने के 'अधिकार' की रक्षा करे? अथवा यह कि पन्थ-निरपेक्षता का सिद्धान्त हर नागरिक का आदर्श बने और उसकी मनोरचना का अंग बन कर जीवन के हर कार्य को मार्ग-दर्शन दे? कुछ ऐसे ही प्रश्न पूछे जायें व उनके उत्तर प्राप्त हों, तभी देश में एक स्वस्थ, पन्थ-निरपेक्ष राजनीति की परम्परा बनेगी। बिना पंथ-निरपेक्ष नागरिकों के पन्थ-निरपेक्ष राज्य की रचना संभव नहीं। हिन्दू समाज से यह अपेक्षा भी कठिन है कि मुस्लिम समुदाय, जिसका पहले ही से असहिष्णुता व बलपूर्वक इस्लामीकरण का लम्बा इतिहास है, लगभग एक शताब्दी से कट्टरवादिता में फिर से अधिकाधिक डूबता जाये और हिन्दू समाज आशंकित न हो।

यह पुस्तक इस्लामी राजनीति, पन्थ-निरपेक्षता व राष्ट्रवाद पर डॉ० अम्बेडकर के व्यक्तिगत विचारों की चर्चा के सीमित उद्देश्य से तैयार की गयी है और उनकी उपर्युक्त पुस्तक में सम्मिलित विचारों पर ही मुख्यतः आधारित है। वर्तमान राजनीतिक वाद-विवाद में क्योंकि धर्म-निरपेक्षता ही बहस का केन्द्र-बिन्दु बन गया है, अतः यह समझना उपयोगी होगा कि इस प्रश्न पर मुस्लिम-समुदाय कहाँ खड़ा है। इस विषय को उजागर करने के लिए डॉ० अम्बेडकर से अधिक योग्य विद्वान् कौन होगा! सम्भव है उनका विवेचन हिन्दू भद्रवर्ग को निद्रा से जगाये और हिन्दू बुद्धिजीवी उनके इस आह्वान पर ध्यान दें :

"मेरे तर्कों का बहुत बड़ा भाग हिन्दुओं को सम्बोधित है। इसका एक स्पष्ट कारण है, जो किसी की भी समझ में आ जायेगा। हिन्दू बहुसंख्या में हैं। इस नाते उनके दृष्टिकोण का महत्त्व होना ही चाहिए। उनकी आपत्तियों को, चाहे वे तर्कसम्मत हों या भावुकतापूर्ण, दूर किये बिना (हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की) समस्या का शान्तिपूर्ण हल सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त, अपने तर्कों को अधिकांशतः हिन्दुओं को ही सम्बोधित करने के कुछ विशेष कारण भी हैं जो दूसरे लोगों को

पूरी तरह स्पष्ट नहीं होंगे।

मैं अनुभव करता हूँ कि जो हिन्दू-जन अपने बान्धवों के भाग्यों का पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं, उनकी 'देखने में सक्षम आँख' (कार्लाइल के शब्द-प्रयोगानुसार) लुप्त हो गयी है और वे कुछ खोखले भ्रमजालों की चमक ओढ़े घूम रहे हैं जिनके परिणाम, मुझे भय है, हिन्दुओं के लिए घातक होंगे।

हिन्दुओं को यह बोध नहीं होता, यद्यपि यह अनुभव-सिद्ध है कि हिन्दू व मुसलमान न तो स्वभाव (मिजाज़) में एक हैं, न आध्यात्मिक अनुभव में और न ही राजनीतिक एकता की इच्छा में; और जिन कुछ थोड़े क्षणों में वे सौहार्द के से सम्बन्धों की ओर बढ़े, तब भी ये सम्बन्ध तनावपूर्ण थे। फिर भी हिन्दू इसी भ्रम को प्रसन्नतापूर्वक अपनाये रहेंगे कि पिछले अनुभवों के बावजूद, हिन्दुओं व मुसलमानों में घनिष्ठता बनाने के लिए दोनों के बीच लक्ष्यों, भावनाओं व नीतियों की व्यापक एवं वास्तविक एकता की पर्याप्त मात्रा बची हुई है।

—हिन्दू इसी भ्रम को पाले हैं कि पाकिस्तान मात्र जिन्ना की ही एक सनक है और इसका समर्थन न मुस्लिम जनसाधारण में है, न ही अन्य मुस्लिम नेताओं में। वे इस भ्रम से चिपके हुए इसलिए हैं कि सर सिकन्दर हयात खान और मिस्टर फज़लुल हक़ जिन्ना का खुला समर्थन नहीं कर रहे हैं। जिन्ना का मुस्लिम जनसाधारण के साथ उठना-बैठना और हेल-मेल आरम्भ करना हिन्दुओं के लिए मात्र मनोरंजन का विषय है, क्योंकि इसमें उन्हें केवल जिन्ना द्वारा अपनी तर्कवादिता की अपने अनुयायियों के अंधविश्वासों के साथ अदला-बदली ही दिख रही है।

हिन्दू-पक्ष की ओर से ऐसी बातें सुनकर आश्चर्य होता है कि हिन्दू-बुद्धि इतनी मन्द व शिथिल कैसे हो गयी ! वे यह देख नहीं पा रहे कि सर सिकन्दर और मि० फज़लुल हक, दोनों ही मुस्लिम-लीग की शाखाएं अपने प्रान्तों में खोलने के उस समय विरोधी थे जब १६३७ में मि० जिन्ना ने मुस्लिम-लीग को पुनर्जीवित करना चाहा था। इस विरोध के बावजूद पंजाब व बंगाल में लीग की शाखाएं स्थापित हुईं और एक ही वर्ष के भीतर दोनों नेता इनमें शामिल होने को बाध्य हो गये। यह वही बात हुई कि आये तो थे झगड़ने, लगे नाक रगड़ने। लीग की विजय का इससे अधिक स्पष्ट प्रमाण ढूँढने की आवश्यकता नहीं। और फिर, यदि वे पाकिस्तान बनाने के विरोधी वास्तव में हैं तो इसकी खुली घोषणा कर सकते हैं। पर उन्होंने ऐसा अभी तक किया नहीं है। यह सब तो बिल्कुल स्पष्ट ही है। फिर भी हिन्दू यही कहते रहेंगे कि मुस्लिम-नेता जिन्ना-समर्थक नहीं हैं। मि०

जिन्ना के आम मुसलमानों के बीच उठने-बैठने को केवल तार्किकता की अंधविश्वासों से अदला-बदली अर्थात् विवेक खोकर अंधविश्वास ओढ़ लेना नहीं कहा जा सकता। —यह तो रणनीति है, रणनीतिक एकजुटता है। और यदि इसे मि० जिन्ना का तर्क से हटकर अंधविश्वास में डूब जाना भी कहें तो यह डुबकी उन्होंने अपनी विचारधारा को साथ लेकर लगायी है, जिसके फलस्वरूप जितना वह डूबते जा रहे हैं उतनी ही वह विचारधारा मुस्लिम समुदाय के हर वर्ग—हर तबके—में फैलती जा रही है और उनकी मानसिकता का अभिन्न अंग बनती जा रही है। यह नितान्त स्पष्ट है, किन्तु हिन्दू इसे तथ्यों के उस प्रकाश में देखेंगे नहीं। —इन्हीं कारणों से मैंने अपने तर्कों का इतना बड़ा भाग हिन्दुओं को सम्बोधित किया है। कपोल-कल्पित भावुकताओं और धारणाओं की मोटी, अभेद्य दीवार ने हिन्दुओं तक नये प्रकाश की किरणों को पहुँचने से रोक रखा है। इसी कारण मैंने अपनी बैट्रियाँ चालू करने की गम्भीर आवश्यकता अनुभव की। मैं नहीं जानता कि इस दीवार में दरारें पैदा करके अंधेरे कमरे में प्रकाश पहुँचाने में मैं कितना सफल हुआ हूँ। मुझे संतोष है कि मैंने अपना कर्तव्य निभाया है। हिन्दू यदि अपना कर्तव्य नहीं निभाते तो वे वही परिणाम भुगतेंगे जिनके लिए वे आज यूरोप पर हँस रहे हैं, और यूरोप की ही भाँति नष्ट भी हो जायेंगे।"

(डॉ० अम्बेडकर कृत 'थौट्स ऑन पाकिस्तान' के उपसंहार से, पृ० ३४९-५२)

२
मुस्लिम लीग की माँग

मुस्लिम लीग ने मुस्लिम समुदाय के भीतर व्यापक राजनीतिक चर्चाओं के बाद, भारत के मुसलमानों के लिए 'पाकिस्तान' नाम से एक अलग मुस्लिम राष्ट्र बनाने की स्पष्ट माँग उठायी। २६ मार्च, १९४० को अपने लाहौर अधिवेशन में लीग ने पाकिस्तान बनाने का वह ऐतिहासिक प्रस्ताव पारित किया, जिसके तीसरे अनुच्छेद में घोषणा थी :

"यह संकल्प लिया कि अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के इस अधिवेशन का यह सुविचारित मत है कि ऐसी कोई भी सांविधानिक योजना इस देश में चलेगी नहीं या मुसलमानों को मान्य नहीं होगी, जो इस बुनियादी सिद्धान्त पर आधारित न हो कि भौगोलिक दृष्टि से सटी हुई इकाइयों को, आवश्यकतानुसार स्थानीय फेरबदल के साथ, ऐसे क्षेत्रों में बाँटा जाय कि वे क्षेत्र जिनमें मुसलमान बहुसंख्या में हैं, जैसे कि भारत के उत्तर-पश्चिमी व पूर्वी भागों में हैं, इस प्रकार संगठित हो सकें कि वे स्वतंत्र राज्य बन जायें और उनकी इकाइयाँ स्वायत्तशासी और सार्वभौम हों।" (पृ० ३)*

मुहम्मद अली जिन्ना ने इस अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में इस प्रश्न पर मुसलमानों की स्थिति स्पष्ट की। उन्होंने कहा :

"भारत के मुसलमान भारत की आजादी का असंदिग्ध रूप से समर्थन करते हैं। पर, यह आजादी पूरे भारत की होनी चाहिए, न कि केवल एक वर्ग की। यदि हिन्दू आजाद हो जायें और उसके बाद मुसलमान उनके गुलाम होकर रह जायें, तो यह ऐसी आजादी नहीं जिसके लिए मुसलमानों को संघर्ष करने को कहा जाये। किसी भी अर्थ में मुसलमान स्वयं में एक राष्ट्र हैं। यदि भारत की (आपसी सम्बन्धों की) समस्या को मात्र दो समुदायों के बीच की समस्या ही माना गया तो यह हल नहीं होगी। यह दो राष्ट्रों के बीच की समस्या है और इससे इसी प्रकार निपटा जाना चाहिए। हिन्दू और मुसलमान कभी एक साझी राष्ट्रीयता विकसित कर पायेंगे, यह एक कोरा सपना है। हिन्दुओं और मुसलमानों के धार्मिक तत्त्वज्ञान, सामाजिक रीति-रिवाज

---

* कोष्ठकों में दी गयी पृष्ठ-संख्याओं का सन्दर्भ: डॉ० अम्बेडकर की पुस्तक 'पाकिस्तान ऑर पार्टिशन ऑफ इंडिया' (१९४५); प्रकाशक : ठक्कर एंड कं०, बम्बई

और साहित्य अलग-अलग हैं। उनमें न आपस में शादी-ब्याह होते हैं, न आपसी खान-पान। वास्तव में, उनका सम्बन्ध दो अलग-अलग सभ्यताओं से है जो एक-दूसरे से बिल्कुल विपरीत विचारों और धारणाओं पर आधारित हैं। ज़िन्दगी के बारे में उनकी सोच अलग-अलग है, जीने के अन्दाज अलग-अलग हैं। यह स्पष्ट है कि हिन्दू और मुसलमान अपनी प्रेरणाएं इतिहास के अलग-अलग स्रोतों से प्राप्त करते हैं। उनके महाकाव्य अलग हैं, वीर पुरुष अलग हैं, गाथाएं अलग हैं। ज्यादातर एक का वीर पुरुष दूसरे का शत्रु होता है, और यही बात उनकी जय-पराजयों में भी है। ऐसी दो अलग कौमों को एक राज्य के नीचे जबरदस्ती बिठा देने से, जहाँ कि एक तबका बहुसंख्यक है और दूसरा अल्पसंख्यक, केवल कड़वाहट ही बढ़ेगी और ऐसे राज्य का शासन चलाने के लिए जो भी ताना-बाना तैयार किया जायेगा, वह आखिरकार नष्ट ही हो जायेगा। 'राष्ट्र' की किसी भी परिभाषा से मुसलमान एक अलग राष्ट्र ही कहलायेंगे, और उनकी अपनी सरजमीं, अपना इलाका और अपना राज्य होना ही चाहिए।..... अतः मुस्लिम-भारत ऐसा कोई संविधान स्वीकार नहीं करेगा जिसका एकमात्र परिणाम स्थायी बहुसंख्यकों का स्थायी शासन ही होने वाला हो। इसलिए एक ही मार्ग खुला है कि भारत को स्वतंत्र राज्यों में बाँटकर अपने-अपने देश बनाने की छूट यहाँ की बड़ी कौमों को रहे।"

('स्ट्रगल फॉर पाकिस्तान,' आई० एच० कुरेशी, कराची, १९८७, पृ० १२८-२९)

हिन्दू जिस भूमि को युगों-युगों से अपनी पुण्यभूमि भारतवर्ष मानते रहे हैं उसके दो टुकड़े करके एक मुस्लिम राष्ट्र और एक 'गैर-मुस्लिम' राष्ट्र बनाने की माँग उठने पर वे भौंचक्के रह गये। वे मुस्लिम समुदाय के इस कथन से रुष्ट थे कि भारत के मुसलमान एक अलग राष्ट्र हैं। हिन्दुओं को लगता रहा है कि भारतीय सामाजिक जीवन की कुछ विशेषताएं दोनों समुदायों के बीच एकता के तारों का काम करती हैं। पर क्या इतना ही पर्याप्त था ? डॉ० अम्बेडकर कहते हैं :

"यह निर्विवाद है कि (भारतवर्ष के) अधिकांश मुसलमान उसी जाति के हैं जिसके हिन्दू हैं। इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि सभी मुसलमान एक ही भाषा नहीं बोलते, और बहुत से तो वही बोलते हैं जो हिन्दू बोलते हैं। दोनों समुदायों में कई सामाजिक रिवाज भी एक समान हैं। यह भी सत्य है कि कुछ धार्मिक कृत्य व प्रथाएं दोनों समुदायों में एक से हैं। परन्तु, प्रश्न यह है कि क्या इन सभी तत्त्वों से ही हिन्दू व मुसलमान एक राष्ट्र बन जाते हैं, या कि क्या इनसे उनमें एक दूसरे से जुड़ने की इच्छा पैदा हुई है ?" डॉ० अम्बेडकर कृत 'पाकिस्तान ऑर पार्टिशन ऑफ इण्डिया', पृष्ठ १५)

"---पहली बात तो यह है कि (दोनों समुदायों में) जो समान विशेषताएं इंगित की जाती हैं वे दोनों समुदायों में सामाजिक ऐक्य स्थापित करने हेतु एक-दूसरे के तौर-तरीकों को अपनाने या उन्हें आत्मसात् करने के लिए किये गये किन्हीं सचेतन प्रयासों का परिणाम नहीं हैं। सच्चाई यह है कि ये समानताएं कुछ अन्सोचे कारणों का परिणाम हैं। कुछ तो ये धर्मान्तरण की प्रक्रिया के अधूरी रह जाने से हैं। भारत जैसे देश में, जहाँ अधिकांश मुसलमान सवर्ण या असवर्ण हिन्दुओं में से बनाये गये हैं, इन धर्मान्तरित लोगों का इस्लामीकरण न तो पूर्ण हो सका, न प्रभावी। इसका कारण, परिवर्तित व्यक्तियों द्वारा विद्रोह का भय भी हो सकता है अथवा धर्मान्तरण के लिए मान जाने की स्थिति तक पहुँचाने का तरीका या मौलवियों की अपर्याप्त संख्या के कारण मजहबी पाठ पढ़ाने में रह गयी कमी भी हो सकती है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि मुस्लिम समुदाय के बहुत बड़े भाग अपने धार्मिक-सामाजिक जीवन में यहाँ-वहाँ अपने हिन्दू मूल को प्रकट कर देते हैं। और, कुछ, यह सैकड़ों वर्षों तक एक ही वातावरण में साथ रहने का भी प्रभाव है। समान वातावरण से समान प्रतिक्रियाएं पैदा होना अवश्यम्भावी है और उस वातावरण के प्रति एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया देते-देते व्यक्तियों की एक सी किस्म (प्रकार) बन ही जाती है। इनके अतिरिक्त, ये समान विशेषताएं बादशाह अकबर द्वारा आरम्भ किये गये हिन्दू-मुस्लिम धर्म-मजहब के मेल-जोल के भी अवशेष हैं—एक मृतप्राय भूतकाल के, जिसका न वर्तमान है न भविष्य।" (वही, पृ० १५-१६)

वर्तमान समय में समानता के इन लक्षणों का ही क्या हो रहा है? पिछले कुछ दशकों में मुस्लिम समुदाय के भीतर कट्टरता बढ़ाने की प्रक्रिया बहुत तेज हुई है। इस प्रक्रिया से हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द के मार्ग में जो अतिरिक्त कठिनाइयाँ डॉ० अम्बेडकर द्वारा पहचान ली गयी होतीं, उनका अनुमान लगाना कठिन नहीं। इस बढ़ते इस्लामीकरण का एक सुस्पष्ट उदाहरण हरियाणा का मेवात क्षेत्र है, जहाँ कुछ ही वर्ष पहले मुस्लिम अपने पूर्वजों के हिन्दू समाज में वापस आने को तैयार थे तो अब तीव्र हुए इस्लामीकरण के प्रभाव से मुस्लिम कट्टरवाद अति उग्र रूप में प्रकट हो रहा है।

डॉ० अम्बेडकर कहते हैं : "जहाँ तक जातीय एकता, भाषाई एकता, और एक ही देश में साथ रहने का तर्क है, यह मुद्दा एक दूसरे ही प्रकार का है। यदि ऐसी बातें राष्ट्र को बनाने या तोड़ने में निर्णायक होतीं तो हिन्दुओं का यह कथन ठीक होता कि जातीय, भाषायी और निवास की समानता के कारण हिन्दू व मुसलमान एक राष्ट्र हैं। ऐतिहासिक अनुभवों से तो यह स्पष्ट होता है कि न जाति, न भाषा

और न ही एक देश में निवास, किसी जनसमूह को एक राष्ट्र के सूत्र में पिरोने के लिए पर्याप्त है।" (पृ० १६)

"--क्या कोई ऐसा ऐतिहासिक घटना-क्रम है जिसे हिन्दू और मुसलमान समान रूप से गौरव या व्यथा के विषय के रूप में याद रखे हुए हैं ? समस्या की जड़ में यही प्रश्न है। यदि हिन्दू स्वयं को और मुसलमानों को एक ही राष्ट्र का अंग मानना चाहते हैं, तो उन्हें इसी प्रश्न का उत्तर देना होगा। दोनों समुदायों के बीच सम्बन्धों के इस पक्ष पर दृष्टि डालें तो यही सामने आयेगा कि वे तो बस एक दूसरे से युद्ध में रत दो सेनाओं की भाँति रहे हैं। उनके बीच किसी साझी उपलब्धि की प्राप्ति के लिए मिल-जुले प्रयासों का कोई युग नहीं रहा। उनका इतिहास एक दूसरे के नाश का इतिहास है, राजनीतिक और मजहबी शत्रुताओं का इतिहास है। जैसा कि भाई परमानन्द ने अपनी पुस्तिका 'हिन्दू राष्ट्रवादी आन्दोलन' में उल्लेख किया है, "हिन्दू अपने इतिहास में पृथ्वीराज, प्रताप, शिवाजी और बन्दा वैरागी के प्रति श्रद्धा रखते हैं, जिन्होंने इस भूमि की रक्षा और सम्मान के लिए मुसलमानों से संघर्ष किया; जबकि मुसलमान मुहम्मद बिन कासिम जैसे विदेशी हमलावरों और औरंगजेब जैसे शासकों को अपना राष्ट्रनायक मानते हैं।" धार्मिक क्षेत्र में हिन्दू रामायण, महाभारत और गीता से अपनी प्रेरणा पाते हैं। दूसरी ओर, मुसलमान अपनी प्रेरणाएं कुरान और हदीस से प्राप्त करते हैं। अतः, जो बातें उन्हें एक सूत्र में बाँधती हैं, उनसे अधिक शक्तिशाली हैं वे बातें जो उन्हें बाँटती हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों के सामाजिक जीवन की कुछ विशेषताओं--समान जाति, भाषा व देश जैसी कुछ बातों — पर निर्भर करके हिन्दू उन बातों को आधारभूत और महत्त्वपूर्ण मानने की गलती कर रहे हैं जो केवल संयोगजनित और ऊपरी हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों को जितना ये तथाकथित् समानताएं मिलाती हैं, उससे कहीं अधिक बाँटती हैं राजनीतिक व साम्प्रदायिक शत्रुताएं। दोनों समुदाय अपना अतीत यदि भूल पाते तो शायद सम्भावनाएं कुछ और होतीं।" (पृ० १७-१८)

"--पर दुःख यह है कि दोनों समुदाय अपना भूतकाल न मिटा सकते हैं, न भुला सकते हैं। उनका भूतकाल उनके धर्म या मजहब में स्थापित हुआ पड़ा है और अपने भूतकाल को भूलना उनके लिए अपने धर्म को या मजहब को त्यागने जैसा है। इसकी आशा करना व्यर्थ है।

ऐतिहासिक समानताओं के अभाव में हिन्दुओं का यह विचार कि हिन्दू और मुसलमान एक राष्ट्र हैं, टिक नहीं पाता। इसी पर आग्रह करते रहना मानो मतिभ्रम में पड़े रहना है।" (पृ० १९)

३
वैमनस्यपूर्ण रक्तरंजित इतिहास

डॉ० अम्बेडकर की मान्यता थी कि हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों की आज की कड़वी सच्चाई जिस इतिहास में से निकली है, उसे समझना बहुत आवश्यक है। उनका विश्वास था कि सन् ७११ में मुहम्मद बिन कासिम द्वारा सिंध पर किये गये आक्रमण से आरम्भ हुए मुस्लिम-सेनाओं के निरंतर आक्रमणों, और आक्रमणकारियों द्वारा अपनाये गये तौर-तरीकों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच ऐसी गहरी कड़वाहट पैदा कर रखी है, जिसे लगभग एक शताब्दी की राजनीतिक कार्यवाहियों ने भी न तो शान्त किया है, न ही जिसे लोग भुला पाये हैं।

"—क्योंकि, हमलों के साथ-साथ मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया गया, बलपूर्वक धर्मान्तरण कराये गये, धन-सम्पत्ति की लूट की गयी, पुरुषों, महिलाओं व बच्चों को अतिशय अपमानित किया गया या गुलाम बना दिया गया। इसलिए इसमें आश्चर्य की बात क्या है कि इन आक्रमणों की स्मृतियाँ सदा ही बनी रहीं और मुसलमान उन्हें गर्व से तथा हिन्दू लज्जा एवं ग्लानि के साथ याद करते रहे हैं!

किन्तु इन सब बातों के अतिरिक्त भी एक भीषण खेल भारत के उत्तर-पश्चिमी कोने (वर्तमान अफगानिस्तान और पश्चिमोत्तर पाकिस्तान के क्षेत्र) में खेला जा रहा था। मुसलमानों के गिरोह के गिरोह एक के बाद एक लहरों की भाँति इस क्षेत्र में उतरते थे और वहाँ से शेष भारत में फैलते जाते थे। भारत के शेष भागों में तो यह मुस्लिम लहर सँकरी धाराओं में पहुँची और समय के साथ-साथ अपनी पहुँच की अन्तिम सीमा से वापस भी हो गयी, परन्तु जब तक वे रहे, उन्होंने भारत के इस उत्तर-पश्चिमी कोने की मूल आर्य संस्कृति पर अपनी इस्लामी संस्कृति की मोटी परतें बिछा दीं। उससे इस क्षेत्र का धार्मिक और राजनीतिक दोनों दृष्टियों से एक अलग ही रंग हो गया। निःसन्देह, मुस्लिम हमलावर हिन्दुओं के विरुद्ध नफरत के गीत गाते हुए ही भारत की ओर आये थे। किन्तु, वे केवल नफरत के ये गीत गाकर और मार्ग में पड़ने वाले मन्दिर तोड़कर ही वापस नहीं चले गये। ऐसा होता तो यह वरदान होता। वे अपने अभियानों के इतने अस्थायी परिणामों से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने एक स्थायी कार्य भी किया—वह था इस्लाम का बीज बोने का कार्य। इस पौधे का असाधारण फैलाव

हुआ है।" (पृ० ४७-४८)

डॉ० अम्बेडकर ने डॉ० टाइटस की पुस्तक 'इंडियन इस्लाम' और लेन पूल की 'मेडिवल इण्डिया' से उद्धरण लेकर निम्न विवरण प्रस्तुत किया है (पृ० ३६-४६):

"(सन् ७११ का मुहम्मद बिन कासिम का) पहला मुस्लिम आक्रमण देश पर उनका स्थायी कब्जा नहीं करवा पाया, क्योंकि बगदाद का खलीफा, जिसके हुक्म से यह आक्रमण किया गया था, नौवीं सदी के मध्य में इस दूर-दराज के प्रदेश सिन्ध से अपना सीधा नियंत्रण हटाने को विवश हो गया। इस वापसी के कुछ ही समय बाद सन् १००१ में प्रारम्भ हो गये गजनी के महमूद के भयंकर आक्रमण, जो एक के बाद एक होते रहे। महमूद गज़नवी की सन् १०३० में मृत्यु हो गयी। परन्तु ३० वर्षों के अल्पकाल में उसने भारत पर सत्रह बार हमले किये। महमूद के बाद आया मुहम्मद घोरी, जिसने बर्बर आक्रमणों का अपना अभियान ११७३ ई० में आरम्भ किया। सन् १२०६ में वह मारा गया। ३० वर्ष तक गजनी के महमूद ने भारत का विनाश किया और तीस वर्ष तक मुहम्मद घोरी ने भी इस देश को वैसा ही उजाड़ा। उसके बाद चंगेज़ खान के मुगल गिरोहों के हमले होने लगे। वे सर्वप्रथम सन् १२२१ में आये। उस समय शीत ऋतु में वे भारत की सीमा पर ही रुके रहे और अन्दर प्रविष्ट नहीं हुए। उसके बीस वर्ष बाद उन्होंने लाहौर पर धावा बोला और उसे लूट लिया। उनका सबसे भयंकर हमला सन् १३९८ में तैमूर की अगुवाई में हुआ था। फिर, १५२६ में बाबर के रूप में एक नया हमलावर सामने आया। बाबर के बाद भी भारत पर आक्रमण रुके नहीं। दो, हमले और हुए। १७३८ में नादिरशाह की हमलावर सेनाओं ने 'समुद्र की सी उग्रता लिये' किसी उफनती नदी की भाँति पंजाब को अपनी चपेट में ले लिया। उसके बाद सन् १७६१ में अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण हुआ जिसने पानीपत के युद्ध में मराठा सेनाओं को परास्त कर हिन्दुओं द्वारा मुस्लिम हमलावरों से अपनी हारी हुई धरती को वापस छीनने के प्रयास सदा के लिए समाप्त कर दिये।

ये मुस्लिम आक्रमण केवल लूट-पाट और विजय की लालसा से ही नहीं किये गये थे। इनके पीछे एक और उद्देश्य था। मुहम्मद बिन कासिम का अभियान यों तो दंडात्मक स्वरूप का था और सिंध के राजा दाहिर को दंडित करने के उद्देश्य से किया गया था क्योंकि उसने सिंध के बन्दरगाह देवल पर अरब के एक समुद्री जहाज को जब्त करने के बाद उसके लिए मुआवजा देने से इन्कार कर दिया था। पर, इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि इस अभियान का एक उद्देश्य हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा और उनके बहुदेववाद पर करारा प्रहार करके भारत में इस्लाम

की स्थापना करना भी था। हज्जाज को भेजे एक पत्र में मुहम्मद बिन कासिम ने जो कहा, उसके उद्धरण इस प्रकार मिलते हैं :

"राजा दाहिर के भतीजे, उसके योद्धाओं और बड़े अधिकारियों को मार डाला गया है तथा काफिरों को या तो इस्लाम कबूल करवा दिया गया है या उनका वध कर दिया गया है। मूर्तियों वाले मन्दिरों के स्थान पर मस्जिदें और अन्य इबादतगाह बना दिये हैं, खुत्बा पढ़ा जाता है, अजान दी जाती है ताकि नमाज़ सही वक्त (समय) पर हो सके। सुबह-शाम तकबीर और अल्लाह-ओ-अकबर की तारीफ अता की जाती है।" (टाइटस की पुस्तक 'इंडियन इस्लाम' के पृ० १० पर उद्‌धृत)

यह सन्देश, जिसके साथ राजा दाहिर का कटा सिर भी था, प्राप्त होने पर हज्जाज़ ने अपने सेनापति को यह उत्तर भेजा--

"—खुदा का हुक्म है--'काफिरों को कोई पनाह (शरण) न दो, सिर्फ उनकी गर्दनें काटो।' यह जान लो कि यह महान् खुदा का हुक्म है।—" (संदर्भ—वही)

गज़नी का महमूद भी भारत पर अपने अनेक हमलों को जेहाद के रूप में ही देखता था। महमूद गज़नवी के इतिहासकार अल-उत्बी ने इन हमलों का वर्णन करते हुए लिखा है :

"उसने मूर्तियों वाले मन्दिरों को ध्वस्त कर डाला और इस्लाम को स्थापित किया। उसने नगरों—पर कब्जा किया, दूषित मान्यताओं वाले नीच लोगों को मार डाला, मूर्ति-पूजकों को नष्ट किया और मुसलमानों को सन्तोष प्रदान किया। फिर वह घर वापस हो लिया और इस्लाम की खातिर प्राप्त की गयी अपनी फतहों (विजयों) का ऐलान किया—और यह कसम खायी कि वह हिन्द के खिलाफ़ हर साल जेहाद छेड़ेगा।" (वही, पृ० ११)

मुहम्मद घोरी भी भारत पर अपने हमलों में इसी मजहबी उत्साह से प्रेरित होता था। इतिहासकार हसन निज़ामी ने उसके कारनामों का वर्णन इस प्रकार किया है :

"उसने अपनी तलवार के जोर पर हिन्द की जमीन से काफिरत और पापाचार की गन्दगी का सफाया कर दिया और उस सारे मुल्क को बहु-ईश्वरवाद के काँटे व मूर्ति-पूजा की गलाजत से छुटकारा दिलाया, और अपने शाही जलवे तथा बेखौफ बहादुरी से एक भी मन्दिर खड़ा नहीं छोड़ा।" (वही, पृ० ११)

तैमूर ने अपने संस्मरणों में बताया है कि भारत पर उसके हमलों का कारण क्या था :

"हिन्दुस्तान पर हमलों का मेरा उद्देश्य काफिरों के खिलाफ एक अभियान चलाना और उसके द्वारा उनकी काफिरत छुड़ाकर उनसे (सपरिवार खुदा की नेमतों से जो नवाजे जायें उन) मुहम्मद के हुक्म के अनुसार सच्चा ईमान कबूल करवाना, उस जमीन से कुविश्वास और बहुदेववाद की गन्दगी साफ कर उसे पाक बनाना तथा मंदिरों और मूर्तियों को उखाड़ फैंकना है, जिससे हम खुदा के सामने ईमान का साथ देने और उसके लिए लड़ने वाले गाज़ी और मुज़ाहिद बन जायेंगे।" (लेन पूल की पुस्तक 'मेडीवल इंडिया' के पृ० १५५ पर उद्धृत)

ये मुस्लिम आक्रमण, भारत पर हमलों के साथ-साथ, मुसलमानों के आपसी युद्ध भी थे। परन्तु यह तथ्य छिपा रह गया है, क्योंकि सभी हमलावरों को बिना भेद किये मुसलमानों की श्रेणी में इकट्ठा रख दिया जाता है। परन्तु सच्चाई यह है कि वे तातार, अफगान और मंगोल थे। गज़नी का महमूद तातार था, मुहम्मद घोरी अफगान था, तैमूर मंगोल था, बाबर तातार था, जबकि नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली अफगान थे। भारत पर आक्रमण करते हुए अफगान तातार का भी नाश करना चाहता था, और मंगोल अफगान व तातार दोनों का। वे सब किसी इस्लामी भाईचारे से बँधे एक प्यार-भरे परिवार के सदस्य नहीं थे। वे एक-दूसरे के प्राणलेवा दुश्मन थे और उनके युद्ध प्रायः आपसी सर्वनाश करने वाले होते थे। परन्तु, जो बात भली भाँति समझनी आवश्यक है वह यह है कि इन सब परस्परघाती संघर्षों के होते हुए भी वे सभी एक समान लक्ष्य से बँधे थे, जो था—हिन्दू धर्म का नाश।

भारत पर मुस्लिम आक्रमणों के इस उद्देश्य की ही भाँति आक्रमणकारियों द्वारा अपनाये गये तरीके भी भारत के परवर्ती इतिहास के लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं थे। मुहम्मद बिन कासिम के मजहबी उत्साह का पहला काम था सिन्ध में हथियाये नगर देवल के ब्राह्मणों की जबरदस्ती सुन्नत करवाना; परन्तु यह पता लगने पर कि ब्राह्मण इस प्रकार के धर्मान्तरण का विरोध कर रहे हैं, उसने १७ वर्ष से बड़े सभी पुरुषों का वध करवा दिया और बाकी को, महिलाओं और बच्चों समेत, गुलाम बनाने का आदेश दिया। हिन्दू-मन्दिर लूटा गया और लूट के ढेरों माल का पाँचवाँ भाग बादशाह के लिए अलग करके शेष को सारे सैनिकों में बराबर बाँट दिया गया।

महमूद गज़नवी ने प्रारम्भ से ही ऐसे तरीके अपनाये जो हिन्दुओं के हृदयों में आतंक पैदा करें। सन् १००१ में राजा जयपाल की पराजय के बाद महमूद ने आदेश दिया कि राजा जयपाल को गलियों में घुमाया जाये ताकि उसके पुत्र

और अन्य सरदार उसे इस लज्जा, दासत्व के बन्धन और अपमान की अवस्था में देखें तथा इस्लाम का खौफ (भय) काफिरों के देश से होता हुआ चारों ओर फैल जाये।

"लगता है काफिरों के कत्लेआम (नरसंहार) से महमूद गजनवी को विशेष खुशी मिलती थी। सन् १०१९ में चांदराय पर एक आक्रमण में अनेक काफिर काट डाले गये या बन्दी बनाये गये और मुसलमानों ने लूट के माल की ओर तब तक कोई ध्यान नहीं दिया, जब तक कि काफिरों और सूर्य एवं अग्नि के उपासकों की हत्याएं करते-करते वे तृप्त नहीं हो गये। इतिहासकार इसके आगे नादानी में लिखता है कि हिन्दू सेनाओं के हाथी खुद-ब-खुद मूर्तियों को त्याग कर इस्लाम की खिदमत को श्रेष्ठ मानते हुए महमूद के पास आ गये।" ('इंडियन इस्लाम', पृ० २२)

हिन्दुओं के ऐसे नरसंहारों से सदा ही हिन्दुओं की मूल भारतीय संस्कृति को बड़ा आघात पहुँचता था, जैसा कि मुहम्मद बख्तियार खिलजी द्वारा बिहार की जीत पर हुआ। जब उसने नदिया (बिहार) जीता तो, तब्कुव्वत-ए- नसीरी से पता चलता है कि

"फातिहों (विजेताओं) के हाथ जबरदस्त लूट लगी। ज्यादातर निवासी मुंडे सिर वाले ब्राह्मण थे। उनका वध कर दिया गया। वह किला और नगर विद्या-केन्द्र लगता था। वहाँ बड़ी संख्या में पुस्तकें मिलीं, पर उनमें क्या लिखा है कोई समझ नहीं सकता था, क्योंकि सभी पुरुषों को मार डाला गया था।"

डॉ० टाइटस इस सम्बन्ध में उपलब्ध जानकारी का मूल्यांकन करते हुए निष्कर्ष निकालते हैं :

"मंदिरों के विध्वंस और मूर्तियों के विखंडन की जानकारी हमारे पास प्रचुर मात्रा में है। हम जानते हैं कि मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध में योजनाबद्ध विध्वंस किया, पर आमदनी पाने के लिए एक अपवाद भी रख छोड़ा, और वह था मुल्तान का प्रसिद्ध मन्दिर, जो एक तीर्थस्थान था और तीर्थयात्री मूर्ति पर बहुत भेंट चढ़ाते थे। अपने लालच की पूर्ति के लिए उसने मन्दिर खड़ा रहने दिया, पर अपनी शत्रुता की कसक निकालने के लिए मूर्ति के गले में गोमांस भी बाँध दिया।

"मिन्हाज-अस-सिराज आगे बताता है कि किस प्रकार महमूद एक हजार मन्दिर तोड़ने के लिए चारों ओर प्रसिद्ध हो गया और यह भी कि उसने सोमनाथ का मन्दिर तोड़ने का असाधारण कार्य सम्पन्न किया और वहाँ की मूर्ति को उठा ले गया। उसका दावा है कि उस मूर्ति के चार टुकड़े किये गये—एक भाग गज़नी

की जामी मस्जिद में लगाया गया, एक शाही महल के प्रवेश-द्वार पर, तीसरा उसने मक्का भेजा और चौथा मदीना।" (इण्डियन इस्लाम)

लेन पूल का कहना है कि गजनी के महमूद को, जिसने कसम खायी थी कि वह हर वर्ष 'हिन्दुस्तान' के काफिरों के विरुद्ध जेहाद छेड़ेगा, अपने मूर्ति-भंजक अभियान से सन्तुष्टि नहीं थी, जब तक कि सोमनाथ का मन्दिर सुरक्षित खड़ा था। इसी अकेले काम के लिए उसने अपने जीवनकाल के बिल्कुल अन्तिम दिनों में मुल्तान से लेकर समुद्र के तट पर स्थित अन्हलवाड़ा तक की दुर्गम मरुस्थलीय यात्रा मार्ग में युद्ध करते हुए पूरी की। वह तब तक चलता रहा जब ऐसा करते-करते अन्त में उसे वह प्रसिद्ध मन्दिर सामने दिखाई दे गया।

"वहाँ एक लाख तीर्थ-यात्री आये रहते थे, एक हजार ब्राह्मण मन्दिर की सेवा और उसके कोष (खजाने) की रक्षा करते थे, सैकड़ों नर्तक और गायक उसके द्वार के आगे नृत्य और गायन करते थे। अन्दर विराजमान था वह प्रसिद्ध शिवलिंग—मणि-मुक्तादिक रत्नों से सुशोभित एक कठोर पाषाण-स्तम्भ—रत्नजटित झूलते दीपाधारों के प्रकाश में दमकता हुआ, जिनकी आभा मन्दिर की सज्जा हेतु तारकों की भाँति जड़े गये बहुमूल्य पत्थरों में झिलमिलाती थी— मंदिर के परकोटे ऐसे ब्राह्मणों से भरे पड़े थे जो विदेशी विधर्मियों के खोखले दम्भ पर हँस रहे थे क्योंकि उन्हें विश्वास था कि इन अधर्मियों को स्वयं भगवान् सोमनाथ निश्चय ही निगल जायेंगे। विदेशी आक्रामक, बिना किसी भय के, दीवारें फाँद कर आ गये; भगवान् अपने सेवकों की करुण पुकार पर भी मूक बने रहे; पचास हजार हिन्दुओं ने अपने धर्म के लिए त्रास भोगा, और पवित्र मन्दिर को 'ईमान' वाले मुसलमानों ने हर्ष से प्रफुल्लित होकर लूट लिया। विशाल शिवलिंग तोड़ दिया गया। उसके टुकड़े विजेता के महल की शोभा बढ़ाने के लिए उठा लिये गये। मन्दिर के किवाड़ उखाड़कर गजनी में लगाये गये और करोड़ों का खजाना मूर्ति-भंजकों के हाथ लग गया।" (मेडिवल इंडिया)

महमूद गजनवी के कारनामे एक पाक रवायत (पवित्र परम्परा) बन गये, जिसका बाद के हमलावरों ने भी 'ईमानदारी' से पालन किया। डॉ० टाइटस के शब्दों में :

"महमूद गजनवी के उत्साही उत्तराधिकारियों में से एक, मुहम्मद घोरी ने अजमेर पर अपनी विजय के दौरान मूर्तियुक्त मन्दिरों के स्तम्भ और मूलाधार नष्ट कर दिये और उनके स्थान पर मस्जिदें तथा मदरसे बनवा दिये। उसने इस्लाम के सिद्धान्तों और कानूनी रिवाजों (प्रथाओं) की घोषणा की तथा उन्हें स्थापित

किया। दिल्ली नगर और आस-पास के क्षेत्र मूर्तियों तथा मूर्ति-पूजा से मुक्त किये गये, और देवताओं के पावन स्थलों पर 'एक खुदा' के मानने वालों ने मस्जिदें बनवा दीं।"

"कुतबुद्दीन ऐबक ने भी, कहा जाता है, लगभग एक हजार मन्दिर गिराये और उनके स्थान पर मस्जिदें बनवायीं। उसने दिल्ली की जामी मस्जिद बनवायी और उस पर हाथियों द्वारा गिरवाये गये मन्दिरों से प्राप्त पत्थर और सोना जड़वाया, तथा उन पर (कुरान के) खुदाई फरमान खुदवाये। इस आततायी तरीके का योजनाबद्ध ढंग से प्रयोग किये जाने का और सबूत दिल्ली की इसी मस्जिद के पूर्वी प्रवेश-द्वार पर विद्यमान उत्कीर्णन से मिलता है, जिसमें लिखा है कि सत्ताईस मन्दिरों के मलबे से इस मस्जिद को बनाया गया।" (इण्डियन इस्लाम)

"अमीर खुसरो बताते हैं कि अलाउद्दीन ने, कुतबुद्दीन द्वारा बनवायी गयी मीनार के समकक्ष एक दूसरी मीनार बनाने के उत्साह में, न केवल पहाड़ों से पत्थर खुदवाये, बल्कि काफिरों के मन्दिर तोड़कर भी सामग्री प्राप्त की। अपनी दक्षिण-विजय के दौरान, अलाउद्दीन ने मन्दिर-विध्वंस का अभियान उसी प्रकार चालू रखा जैसे अनेक पूर्ववर्ती हमलावरों ने उत्तर भारत में किया था।"

"सुल्तान फिरोज शाह ने अपनी फतुहात में बहुत सजीव चित्रण करके बताया है कि उन हिन्दुओं का उसने क्या किया जिन्होंने अपने लिए (दुबारा) नये मन्दिर बना लेने का दुस्साहस किया था। 'जब हिन्दुओं ने नगर (दिल्ली) में और आस-पास ऐसा किया (मंदिर दुबारा बनाये) जो कि पैगम्बर के कानून के खिलाफ था जिसमें ऐसा सहन न करने को कहा गया है, मैंने खुदाई मार्गदर्शन में इन भवनों को तोड़ डाला और उन काफिरों के नेताओं को कत्ल कर दिया, और बाकी (शेष) को कोड़ों की सजा दी, जब तक कि यह बुराई पूरी तरह समाप्त नहीं हो गयी। और, जहाँ पर काफिर मूर्ति-पूजक मूर्तियों की पूजा करते थे, वहाँ अब खुदा की मेहरबानी से मुसलमान सच्चे खुदा की इबादत करते हैं'।"

यहाँ तक कि शाहजहाँ के शासन-काल में भी उन मन्दिरों के विध्वंस का वर्णन हम पढ़ते हैं, जिन्हें हिन्दुओं ने दुबारा बनाना प्रारम्भ किया। हिन्दुओं के पवित्र स्थलों पर सीधे आक्रमणों का वर्णन बादशाह-नामा में बड़ी शान से किया गया है :

"इतिहासकार कहता है, बादशाह को यह जानकारी दी गयी कि दिवंगत बादशाह (अकबर) के शासनकाल में काफिरों के गढ़ बनारस में कई मन्दिर बनाने प्रारम्भ किये गये थे, पर पूरे नहीं हो सके थे। उन मन्दिरों को काफिर अब पूरा

करना चाहते हैं। ईमान के रक्षक बादशाह ने हुक्म दिया कि बनारस में और उनकी सल्तनत में आने वाले सारे क्षेत्र में किसी भी स्थान पर जो भी मन्दिर बनाने प्रारम्भ किये गये थे वे सब गिरा दिये जायें। इलाहाबाद सूबे (प्रान्त) से सूचना मिली कि बनारस जिले में ७६ मन्दिर ध्वस्त कर दिये गये।" (इण्डियन इस्लाम)

मूर्ति-पूजा को पूर्णतः नष्ट करने का अन्तिम दुष्प्रयास औरंगजेब के लिए करना बचा था। मा अतहिर-ए-आलमगीरी के लेखक ने हिन्दुओं के धार्मिक कथा-उपदेश समाप्त करने और मन्दिरों को नष्ट करने के औरंगजेब के प्रयत्नों का वर्णन दर्प से फूलते इन शब्दों में किया है :

"अप्रैल १६६९ में औरंगजेब को पता लगा कि थट्टा, मुल्तान और बनारस सूबों में, विशेषकर बनारस में, मूर्ख ब्राह्मण अपने विद्यालयों में फिजूल की किताबें पढ़ाया करते हैं, और वहाँ मुसलमान व हिन्दू दोनों ही दूर-दूर से अध्ययन के लिए आया करते हैं। 'ईमान के संचालक' (बादशाह) ने सूबों के गवर्नरों को हुक्म जारी किया कि काफिरों के सभी विद्यालयों और मन्दिरों को पक्के इरादे से गिरा दिया जाये; उन्हें हुक्म हुआ कि मूर्ति-पूजा की शिक्षा और प्रथा को पूर्णतः रोका जाये; बाद में बादशाह को बताया गया कि शाही अधिकारियों ने बनारस का विश्वनाथ-मन्दिर गिरा दिया है।"

जैसा कि डॉ० टाइटस ने लिखा है, "महमूद गजनवी और तैमूर जैसे आक्रमणकारियों की रुचि बलात् धर्मान्तरण से भी अधिक मूर्ति-भंजन, लूटपाट, हिन्दुओं को गुलाम बनाने, या इस्लामी तलवार से उन्हें दोजख (नरक), में झोंकने में थी। परन्तु, जब मुस्लिम राजसत्ता स्थायी रूप से स्थापित हो गयी, तब अधिक-से-अधिक हिन्दुओं को मुसलमान बनाना पहली आवश्यकता बन गयी। इस्लाम को पूरे भारत का मजहब बनाना राज्य-नीति का अंग बन गया।"

कुतबुद्दीन ने, जिसकी मन्दिरों के विध्वंस के लिए लगभग गजनी के महमूद जैसी ही बहुत बड़ी प्रसिद्धि (कुख्याति) थी, बारहवीं शती के अंतिम भाग और तेरहवीं शती के प्रारम्भ में धर्मान्तरण कराने के लिए बारम्बार बल-प्रयोग अवश्य किया होगा। एक उदाहरण लिया जा सकता है -- जब सन् ११९४ में वह कोइल (अलीगढ़) के निकट पहुँचा, तो किले में जो बुद्धिमान एवं प्रखर लोग थे, उन्हें मुसलमान बना लिया गया और शेष सभी तलवार से काट डाले गये।"

आस्था-परिवर्तन कराने के लिए अत्याचारी उपाय प्रयोग में लाने के अन्य बहुत अधिक उदाहरण हैं। फिरोजशाह के काल (१३५१-८८ ई०) का एक दयनीय उदाहरण दिल्ली के एक वृद्ध ब्राह्मण का है, जिस पर अपने घर के भीतर मूर्ति-पूजा करने

और यहाँ तक कि मुस्लिम महिलाओं को भी काफिर बनने की शिक्षा देने का आरोप था। उसको बुलाकर उसका मुकदमा काजियों, हकीमों, वकीलों और बड़े-बूढ़ों के सामने रखा गया। उन सभी ने कहा कि कानूनी प्रावधान बिल्कुल साफ है—ब्राह्मण या तो इस्लाम कबूले, वर्ना उसे जिन्दा जला दिया जाय। उसे सच्चा ईमान (मुसलमान बन जाना) बताया गया और सही राह दिखायी गयी। परन्तु उसने इन्कार कर दिया। परिणामस्वरूप, सुल्तान के हुक्म से उसे जला दिया गया। टीकाकार आगे लिखता है—'सुल्तान की कानून और औचित्य के प्रति निष्ठा तो देखो कि वह उसके पालन से लेश-मात्र भी नहीं हिला-डुला।'

महमूद ने न केवल मन्दिर तोड़े, बल्कि, उसने जीते गये हिन्दुओं को गुलाम बनाने की नीति ही बना रखी थी। डॉ० टाइटस के शब्दों में,

"भारत में इस्लाम के प्रवेश के प्रारम्भिक काल में, न केवल काफिरों के कत्लेआम और मन्दिर तोड़ने का काम किया गया, बल्कि, जैसा कि हम देख चुके हैं, बहुत से पराजित हिन्दुओं को गुलामी में धकेला गया। इन अभियानों में हमलावर सरदारों और सामान्य सैनिकों के लिए एक विशेष आकर्षण लूट के माल (माले गनीमत) को बाँट लेना होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि महमूद ने काफिरों का नरसंहार (कत्लेआम), उनके मन्दिरों का विध्वंस, उन्हें पकड़कर गुलाम बनाना, लोगों की, और विशेषकर मन्दिरों एवं पुजारियों की, सम्पत्ति लूटना अपने अभियानों का मुख्य उद्देश्य बना रखा था। कहा जाता है कि अपने प्रथम आक्रमण के समय लूट का बहुत माल उसके हाथ लगा और पाँच लाख हिन्दू, सुन्दर पुरुष व महिलाएं, गुलाम बनाकर गज़नी ले जाये गये।"

महमूद ने जब सन् १०१७ में कन्नौज को लूटा तो वह इतनी सम्पदा और इतने लोगों को बन्दी बनाकर ले गया कि 'गिनने वालों की अंगुलियाँ थक गयी होंगी।' सन् १०१९ के अभियान के बाद गजनी में और मध्य एशिया में हिन्दू गुलाम मिलना कितनी सामान्य बात हो गयी थी, इसका वर्णन करते हुए उस काल का इतिहासकार लिखता है :

"बन्दियों की गिनती का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि (गुलाम बनाने के लिए) एक कैदी दो से दस दिरहम तक में बिकता था। पकड़े जाने के बाद वे गज़नी ले जाये जाते थे और उन्हें खरीदने के लिए दूर-दूर से व्यापारी आते थे। —गुलामी की जंजीरों में सभी — चाहे धनी हों या निर्धन, काले हों या गोरे — एक से हो जाते थे।"

"सन् १२०२ में जब कुतबुद्दीन ने कालिंजर पर कब्जा किया तो मन्दिरों को

मस्जिदों में परिणत कर देने और मूर्ति-पूजा का नामो-निशान मिटा देने के बाद ५०,००० (पचास हजार) लोगों के गलों में गुलामी के पट्टे बाँध दिये गये और मैदान हिन्दू भीड़ से काले स्याह पड़ गये।"

उन हिन्दुओं की नियति गुलामी ही थी जो जेहाद के दौरान पकड़े जाते। पर, जब युद्ध नहीं भी होता था तब भी मुस्लिम हमलावरों की रीति-नीति में हिन्दुओं को योजनापूर्वक नीचा दिखाना बहुत महत्त्व रखता था। चौदहवीं सदी के आरम्भ में, जब अलाउद्दीन का समय था, कुछ भागों में हिन्दुओं ने उसे काफी छकाया। इसलिए उसने हिन्दुओं पर ऐसे कर लगाने का निश्चय किया जिससे वे विद्रोह में सिर न उठा सकें।

"हिन्दू न तो सवारी के लिए घोड़ा रख सकता था, न (आत्मरक्षा के लिए) कोई हथियार, न ही वह अच्छे कपड़े पहन सकता था और न जीवन के कोई वैभवपूर्ण सुख भोग सकता था।"

जजिया कर लगाने के बारे में डॉ० टाइटस का कहना है : "हिन्दुओं पर जज़िया भारत के विभिन्न भागों में सुल्तानों, बादशाहों और नवाबों के अधीन आ चुके समस्त राज्यों में न्यूनाधिक निरन्तरता से बदस्तूर जारी रहा, यद्यपि बहुत बार यह लगान केवल किताबी होकर रह जाता था क्योंकि उसकी वसूली बहुत कुछ बादशाह की वसूलने की योग्यता पर भी निर्भर करती थी। पर, लगभग आठ सौ वर्षों तक यह लगान मुस्लिम शासन-नीति का एक आधारभूत तत्त्व बने रहने के बाद, अन्ततः प्रबुद्ध शासक अकबर के शासन के नौवें वर्ष (१६६५ ई०) में सारे मुगल साम्राज्य से समाप्त कर दिया गया।"

लेन पूल कहते हैं : "हिन्दुओं को लगान के रूप में अपनी खेती की उपज का आधा देना होता था, और साथ ही भैंस, बकरी तथा अन्य दुधारू पशुओं पर भी महसूल (शुल्क) देना होता था। धनी हो या निर्धन, हर व्यक्ति को प्रति एकड़ और प्रति पशु के हिसाब से कर देना होता था। घूस लेने वाले वसूली-अधिकारियों को तुरंत पद से हटाकर बैंत, सँडसी और शिकंजे से यातनाएं, कारावास और बेड़ियों में जकड़ देने का कठोर दण्ड दिया जाता था। नये कानून कठोरता से लागू किये जाते थे। एक लगान-अधिकारी २० विशिष्ट हिन्दुओं को इकट्ठा करता और पिटाई करके लगान वसूलता था। हिन्दू-घरों में सोना, चांदी, यहाँ तक कि सुपारी जैसी स्फूर्ति और प्रफुल्लता प्रदान करने वाली वस्तु का भी दिखाई देना दुर्लभ हो गया था। (लूटकर) दरिद्र बना दिये गये हिन्दू पूर्व-अधिकारियों की पत्नियों को (लुटेरे) मुस्लिम परिवारों में ही सेवा-कार्य (नौकरी) करने पर विवश होना पड़ता था। लगान-अधिकारी लोगों की दृष्टि में प्लेग की महामारी से अधिक खतरनाक थे। किसी हिन्दू का शाही कारिन्दा बनने से बढ़कर अपमान की और कोई बात न थी, और, हिन्दू लोग ऐसे व्यक्ति से

अपनी लड़की का विवाह नहीं करते थे।"

उस काल का इतिहासकार कहता है कि "ये हुक्म इतनी सख्ती से लागू किये जाते थे कि चौकीदार, खत्त और मुकादिम जैसे छोटे कर्मचारी (हिन्दू होने के कारण) घोड़े पर नहीं बैठ सकते थे, हथियार नहीं रख सकते थे, अच्छे कपड़े नहीं पहन सकते थे, और पान नहीं खा सकते थे। कोई भी हिन्दू सिर उठा कर चल नहीं सकता था। लगान वसूलने के लिए पिटाई, कैद और बेड़ियाँ – ये सब तरीके काम में लाये जाते थे।"

यह सब केवल सनक या नैतिक पतन (गिरावट) का परिणाम नहीं था, बल्कि जो कुछ भी किया जाता था, वह इस्लाम के अगुआओं के मुख्य विचारों की सभी पहलुओं से जितनी भी पहुँच संभव थी, उसके अनुरूप होता था। ये विचार स्वयं काज़ी ने बखूबी (असंदिग्ध रूप में) एक प्रश्न के उत्तर में व्यक्त किये थे, जिसमें सुल्तान अलाउद्दीन ने जानना चाहा था कि इस्लामी कानून के अन्तर्गत हिन्दुओं की स्थिति क्या होगी। काज़ी ने कहा :

"उन्हें (हिन्दुओं को) लगान भरने वाले कहा जाता है, और जब कोई लगान अधिकारी उनसे चांदी माँगे, उन्हें बिना कोई प्रश्न उठाये, पूरी विनम्रता और सम्मान के साथ सोना भेंट करना चाहिए। यदि अधिकारी उनके मुँह में गंदगी फैंके तो उन्हें खुशी-खुशी उसे लेने के लिए मुँह को चौड़ा खोल देना चाहिए। धिम्मी (गैर-मुस्लिम) की असली नीच स्थिति इस प्रकार विनम्रता से धन भेंट करने और अपने मुँह में गन्दगी स्वीकारने से ही प्रकट होती है। इस्लाम का महिमा-गान ही कर्तव्य है और मजहब के प्रति उपेक्षा-भाव ओछापन है। खुदा उन्हें हिकारत (तिरस्कार) से देखता है, जैसाकि उसने कहा है, 'उन्हें दबा कर रखो।' हिन्दुओं को अपमानित बनाकर रखना तो खासकर ही मजहब का कर्तव्य है, क्योंकि वे पैगम्बर के सबसे पुराने जिद्दी दुश्मन हैं, और क्योंकि पैगम्बर ने हमें उनको कत्ल करने, लूटने और कैद करने का हुक्म यह कहकर दिया है कि 'उन्हें इस्लाम कबूल कराओ या मार दो, और गुलाम बनाओ तथा उनकी धन-सम्पत्ति लूट लो।' कोई और नहीं बल्कि स्वयं महान् सिद्धान्तकार हनीफाह ने, जिनके मत के हम सभी अनुयायी हैं, हिन्दुओं पर जज़िया लगाने को सहमति दी है; अन्य विचारशाखाओं के उलेमा तो किसी अन्य मार्ग की अनुमति नहीं देते, सिवाय 'मौत या इस्लाम' के।" (डॉ० टाइटस की पुस्तक 'इण्डियन इस्लाम' में उद्धृत)

तो ऐसी है महमूद गज़नवी के आने (सन् १००१) से लेकर अहमदशाह अब्दाली की वापसी (सन् १७६३ ई०) तक के ७६२ वर्षों की कथा।" (पाकिस्तान ऑर पार्टिशन ऑफ इण्डिया, पृ० ३६-४६, लेखक–डा. भीमराव अम्बेडकर)

४
वैचारिक प्रेरणाएं

मुस्लिम सम्प्रदाय की मूलभूत राजनीतिक प्रेरणाओं के बारे में डॉ० अम्बेडकर लिखते हैं :

"—मुस्लिम कानून के अनुसार दुनिया दो पक्षों में बँटी है—दारुल इस्लाम (इस्लाम का आवास) और दारुल-हर्ब (संघर्ष का देश)। वह देश दारुल-इस्लाम कहलाता है, जहाँ मुसलमानों का राज हो। दारुल-हर्ब वे देश हैं जहाँ मुसलमान रहते तो हैं, पर वे वहाँ के शासक नहीं हैं। इस्लामी कानून के अनुसार भारत देश हिन्दुओं और मुसलमानों की साझी मातृभूमि नहीं हो सकता। यह मुसलमानों की जमीन तो हो सकती है, पर 'बराबरी से रहते हिन्दुओं और मुसलमानों की भूमि' नहीं हो सकती। यह मुसलमानों की जमीन भी केवल तब हो सकती है, जब इस पर मुसलमानों का राज हो। जिस क्षण इस भूमि पर किसी गैर-मुस्लिम का अधिकार हो जाता है, यह मुसलमानों की जमीन नहीं रहती। दारुल-इस्लाम के स्थान पर यह दारुल-हर्ब हो जाती है।

यह न समझा जाये कि ऐसा विचार कोरी किताबी अभिरुचि की बात है, क्योंकि इसमें मुसलमानों के व्यवहार को प्रभावित करने वाली कारगर शक्ति बनने की क्षमता है। इस विचार ने मुसलमानों के व्यवहार पर उस समय भी बड़ा प्रभाव डाला था जब अंग्रेजों ने भारत पर कब्जा किया। ब्रिटिश कब्जे से हिन्दुओं के मनों में तो कोई पापशंका नहीं उत्पन्न हुई, किन्तु मुसलमानों के सामने तुरन्त यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि क्या अब हिन्दुस्तान मुसलमानों के निवास करने योग्य देश रह गया है? मुस्लिम समुदाय के भीतर यह चर्चा प्रारम्भ की गयी, जो, डॉ० टाइटस कहते हैं, लगभग पचास वर्ष तक चली, कि भारत दारुल-हर्ब है या दारुल-इस्लाम? कुछ अधिक उत्साही तत्त्वों ने सैयद अहमद शाहिद के नेतृत्व में सचमुच ही जेहाद की घोषणा कर दी; उन्होंने मुसलमानों को सिखाया कि हिज्रत करके मुस्लिम-राज वाले देशों को चले जाओ, और हिन्दुस्थान भर में अपना आन्दोलन चलाया।

अलीगढ़ आन्दोलन के संस्थापक सर सैयद अहमद ने अपनी सारी प्रतिभा लगाकर मुसलमानों को यह समझाया कि वे हिन्दुस्तान को दारुल-हर्ब केवल इस कारण न मान लें कि यहाँ अब मुस्लिम-राज नहीं रहा। उन्होंने मुसलमानों से आग्रह किया कि हिन्दुस्तान

को दारुल-इस्लाम ही मानें, क्योंकि उन्हें अपने मज़हब के अनुसार सभी रस्मो-रिवाज पूरे करने की आज़ादी है। हिज़रत करने का आन्दोलन कुछ समय के लिए दब गया। परन्तु हिन्दुस्तान दारुल-हर्ब है, यह सिद्धान्त छोड़ नहीं दिया गया। इसका दुबारा प्रचार मुस्लिम-राष्ट्र के झंडाबरदारों ने खिलाफत आन्दोलन के समय १९२०-२१ में किया। इस प्रचार का मुस्लिम समुदाय में अनुकूल प्रभाव भी हुआ। बहुत से मुसलमान न केवल मुस्लिम कानून के अनुसार हिज़रत करने के लिए तैयार हो गये, बल्कि वास्तव में भी भारत में अपने घर छोड़कर अफगानिस्तान की ओर चले गये।

यह भी उल्लेखनीय है कि दारुल-हर्ब से अपने आपको मुक्त करने के लिए मुसलमानों के पास केवल हिज़रत ही एकमात्र मार्ग नहीं है। मुस्लिम कानून का एक और आदेश है—जेहाद छेड़ने का, जिसके द्वारा "मुस्लिम शासक कर्तव्य-बद्ध है कि वह (युद्ध के द्वारा) इस्लाम के राज को तब तक फैलाये जब तक कि पूरी दुनिया इसकी हुकूमत में नहीं आ जाती। सारे संसार को जब दो पक्षों में बाँट दिया है—एक दारुल-इस्लाम और दूसरा दारुल-हर्ब—तो सभी देश दो में से किसी एक श्रेणी में आयेंगे ही। सिद्धान्ततः, दारुल-हर्ब को दारुल-इस्लाम में बदलना हर उस मुस्लिम शासक का कर्तव्य है, जिसमें ऐसा करने का सामर्थ्य है।" और, जिस प्रकार मुसलमानों के हिज़रत कर लेने के दृष्टान्त मिलते हैं, उसी प्रकार ऐसे भी उदाहरण हैं जब उन्होंने जेहाद की घोषणा करने में झिझक नहीं की। सच्चाई जानने के इच्छुक व्यक्ति यदि १८५७ के विद्रोह के इतिहास पर पारखी दृष्टि डालें तो पायेंगे कि वह विद्रोह एक अंश में मुसलमानों द्वारा ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध जेहाद की घोषणा भी था। मुसलमानों के लिए यह विद्रोह उसी बगावत की पुनरावृत्ति थी, जो सैयद अहमद शाहिद ने फैलायी थी। उसने कई दशकों तक मुसलमानों को यह समझाया था कि ब्रिटिश हुकूमत आने के कारण हिन्दुस्तान दारुल हर्ब हो गया है। १८५७ में मुसलमानों ने तो विद्रोह करके भारत को फिर से दारुल-इस्लाम में परिणत करने का प्रयास किया था (हिन्दुओं के लिए भले ही वह देश की स्वाधीनता का संग्राम रहा हो)। उससे नया उदाहरण है १९१९ में अफगानिस्तान द्वारा भारत पर आक्रमण (की योजना) का। यह योजना भारत के मुसलमानों की थी, जो खिलाफ़त आन्दोलनकारियों के ब्रिटिश-विरोधी रवैये से प्रेरित होकर अफगानिस्तान से भारत का उद्धार कराने हेतु सहायता माँगने पहुँचे थे। इस प्रस्तावित आक्रमण से भारत का उद्धार होता या यह गुलाम बनता, इसलिए कहा नहीं जा सकता कि वह आक्रमण हो नहीं पाया। जो भी हो, यह बात निश्चित है कि हिन्दुस्थान पर यदि शत प्रति शत मुस्लिम शासन नहीं है, तो यह दारुल-हर्ब ही कहलायेगा और, मुस्लिम-सिद्धान्त के अनुसार, यहाँ मुसलमानों का जेहाद छेड़ना उचित होगा।

वे जेहाद केवल छेड़ ही नहीं सकते, बल्कि जेहाद की सफलता के लिए किसी विदेशी मुस्लिम शक्ति को सहायता के लिए बुला भी सकते हैं। और, इसी प्रकार, यदि भारत के विरुद्ध कोई विदेशी मुस्लिम शक्ति ही जेहाद छेड़ना चाहती है, तो मुसलमान उसके प्रयास की सफलता के लिए सहायता भी कर सकते हैं।

एक तीसरा सिद्धान्त, जिसकी चर्चा करना प्रासंगिक होगा, यह है कि इस्लाम भूक्षेत्रीय (देश के) नातों को नहीं मानता। इसके रिश्ते-नाते सामाजिक और मजहबी (संप्रदायगत) होते हैं, अतः दैशिक सीमाओं को नहीं मानते। —अन्तरराष्ट्रीय इस्लामवाद (पैन इस्लामिज्म) का यही आधार है। इसी से प्रेरित हिन्दुस्थान का हर मुसलमान कहता है कि वह मुसलमान पहले है और हिन्दुस्तानी बाद में। यही है वह भावना जो स्पष्ट कर देती है कि क्यों भारतीय मुसलमानों ने भारत की प्रगति के कामों में इतना कम भाग लिया है, जबकि वे मुस्लिम देशों के पक्ष का समर्थन करने में अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं, और क्यों उनके खयालों में मुस्लिम देशों का स्थान पहला और भारत का दूसरा है।

—यदि अन्तरराष्ट्रीय इस्लामवाद का यह मजहबपरस्त रूप एक अन्तरराष्ट्रीय इस्लामी राजनीतिक स्वरूप अपनाने की ओर बढ़ता है, तो इसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।" (पाकिस्तान ऑर पार्टिशन ऑफ इंडिया, पृ० २८७-९१)

इस प्रकार की अपनी वैचारिक प्रेरणाओं के प्रभाव में रहते हुए "मुसलमान किस सीमा तक एक ऐसी सरकार की सत्ता को स्वीकारेंगे जिसको बनाने और चलाने वाले हिन्दू होंगे?" यह प्रश्न भी डॉ० अम्बेडकर ने उठाया। इस संदर्भ में उन्होंने इस बात का वर्णन किया कि मुसलमान हिन्दुओं को किस दृष्टि से देखते हैं।

"—मुसलमान की दृष्टि में हिन्दू काफिर है और काफिर सम्मान के योग्य नहीं होता। वह निकृष्टजन्मा और प्रतिष्ठाहीन होता है। इसीलिए काफिर द्वारा शासित देश मुसलमान के लिए दारुल-हर्ब होता है।" (वही, पृ० २९४)

डॉ० अम्बेडकर कुछ उदाहरण भी देते हैं :

"—खिलाफ़त आन्दोलन के दिनों में भी, जब हिन्दू लोग मुसलमानों की इतनी अधिक सहायता कर रहे थे, मुसलमान यह मानना नहीं भूले कि उनकी तुलना में हिन्दू नीची और घटिया जाति के हैं।"

"एक मुसलमान ने खिलाफ़त-समर्थक अखबार 'इन्साफ' में लिखा :

" 'स्वामी' और 'महात्मा' का क्या मतलब (अर्थ) है ? क्या ऐसे शब्द मुसलमान अपने भाषणों या लेखों में गैर-मुस्लिमों के लिए इस्तेमाल (प्रयोग) कर सकते हैं?"

वह लिखता है कि 'स्वामी' का अर्थ है 'मालिक', और 'महात्मा' का अर्थ है

'श्रेष्ठतम आध्यात्मिक शक्तियों वाला' और यह 'रूह-ए-आजम' तथा 'सर्वोच्च आत्मा' के बराबर होता है। उसने मुस्लिम उलेमाओं से कहा कि वे एक आधिकारिक फतवा जारी करके बतायें कि क्या मुसलमानों का गैर-मुस्लिमों के लिए ऐसे सम्मानपूर्ण शब्दों का प्रयोग मुस्लिम कानून के अनुरूप है?

१९२४ में श्री गांधी के कारागार से मुक्त होने पर हर्ष मनाने के लिए आयोजित एक समारोह में घटी एक अनोखी घटना का विवरण समाचारपत्रों में छपा। समारोह हकीम अजमल खाँ द्वारा दिल्ली में संचालित यूनानी (भेषज) तिब्बिया कालेज में हुआ। समाचार के अनुसार एक हिन्दू छात्र ने गांधी जी की तुलना हजरत ईसा मसीह से कर दी। मुस्लिम-भावनाओं को ठेस पहुँचाने वाली इस बात से सारे मुस्लिम छात्र भड़क उठे, और उस हिन्दू छात्र को हिंसक परिणामों की धमकी दी। कहा जाता है कि मुस्लिम प्राध्यापक तक भी अपने फिरके के छात्रों के साथ अपनी आहत भावनाओं के इस प्रदर्शन में सम्मिलित हो गये।" (पृ० २९४-५)

खिलाफ़ती नेता और गांधी जी के निकट सहयोगी (मौलाना) मुहम्मद अली ने १९२३ में कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए गांधी जी के लिए 'महात्मा' जैसे श्रद्धापूर्ण शब्दों का प्रयोग किया और उनकी तुलना ईसा मसीह से की। उसके "—एक वर्ष बाद अलीगढ़ और अजमेर में बोलते हुए मुहम्मद अली ने कहा :

"गांधी का चरित्र कितना ही निर्मल क्यों न हो, मजहबी दृष्टि से वे मुझे किसी भी मुसलमान से, चाहे वह चरित्रहीन ही क्यों न हो, निकृष्ट ही दिखेंगे।"

इस कथन से बहुत उत्तेजना फैली। बहुतों को विश्वास नहीं हुआ कि जिन मुहम्मद अली ने श्री गांधी के प्रति इतनी श्रद्धा दिखायी थी, वे उनके बारे में इतनी अनुदार और अपमानपूर्ण भावनाएं रखने में सक्षम हैं। मुहम्मद अली एक बार लखनऊ के अमीनाबाद पार्क की एक बैठक में बोल रहे थे, तो उनसे पूछा गया कि जो कहा जा रहा है कि उन्होंने श्री गांधी के विरुद्ध भावनाएं व्यक्त कीं, क्या यह सत्य है ? मुहम्मद अली ने बिना किसी झिझक या खेद के उत्तर दिया : "हाँ, मेरे मजहब और मत के अनुसार मैं किसी भी व्यभिचारी और चरित्रहीन मुसलमान को गांधी से बेहतर मानता हूँ।"

उन दिनों यह कहा गया कि मुहम्मद अली को अपनी बात से इसलिए हटना पड़ा कि पूरा रूढ़िवादी मुस्लिम समुदाय इस बात पर बहुत क्रुद्ध था कि अली ने एक काफिर गांधी के लिए ऐसा सम्मान प्रदर्शित किया और उन्हें ईसा मसीह के समकक्ष रख दिया। वे मानते थे कि मुस्लिम कानून एक काफिर के लिए ऐसी प्रशंसा की अनुमति नहीं देता।" (पृ० २९६)

अतः, विचारणीय प्रश्न यह है कि मुस्लिम जन-समुदाय कैसे इतना शक्तिशाली बन जाता है कि वह अपने नेताओं पर इतना नियंत्रण रखने में सक्षम है?

५
हिन्दू-मुस्लिम एकता के निष्फल प्रयास

डॉ० अम्बेडकर ने हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने के हिन्दू-प्रयासों और उनके निष्फल होने के कारणों पर प्रकाश डाला है। उन्होंने लिखा है :

"ब्रिटेन की भारत पर विजय ने हिन्दू-मुस्लिम दोनों समुदायों की परस्पर तुलनात्मक स्थिति में पूर्ण राजनीतिक क्रान्ति ला दी। ६०० वर्षों से मुसलमान हिन्दुओं पर राज कर रहे थे। ब्रिटिश कब्जे ने उन्हें हिन्दुओं के बराबर ला खड़ा किया। शासक के स्तर से नीचे आकर सह-शासित या सह-दासता (हम-गुलामी) की स्थिति में पहुँचना ही अपने आप में पर्याप्त अपमानजनक था, परन्तु, सह-शासित या हम-गुलामों के स्तर से भी नीचे गिरकर हिन्दुओं के गुलाम बन जायें (जैसा मुसलमान सोचते थे कि वे स्वतन्त्र और अविभाजित भारत में बन जायेंगे), यह तो बहुत ही लज्जाजनक होगा। इसलिए, मुसलमान यह पूछते हैं कि क्या यह अस्वाभाविक है कि वे इस असह्य स्थिति से बचना चाहते हैं, और उसके लिए ऐसा स्वतन्त्र राष्ट्र बनाना चाहते हैं जिसमें मुसलमान अमन-चैन (सुख-शान्ति) पा सकें और जिसमें एक शासक जाति व एक गुलाम जाति के बीच का संघर्ष महामारी बनकर उनके जीवन का नाश न कर सके।" (पृ० ३१-३२)

इस शताब्दी के आरम्भिक दशकों में विद्यमान मुसलमानों की इस मानसिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ डॉ० अम्बेडकर हिन्दुओं द्वारा किये गये एकता-प्रयासों का भी वर्णन करते हैं :

"—हिन्दू लम्बे समय से मुसलमानों को अपनी ओर करने के लिए उन्हें रिझाने का प्रयास करते रहे हैं। कांग्रेस पार्टी मुस्लिम लीग से मेल-मिलाप बनाने को बहुत उत्सुक थी।" (पृ० १४१)

"—(मुसलमानों के हृदय जीतने के) इन प्रयासों का इतिहास १९०९ में आरम्भ हुआ माना जा सकता है। (१९०६ में आगा खाँ के नेतृत्व में एक मुस्लिम-शिष्टमंडल वाइसराय लार्ड मिंटो से शिमला में मिला, और मुस्लिम माँगें प्रस्तुत कीं, जो मुख्यतः दो थीं—सभी विधायी संस्थाओं में मुसलमानों का अलग निर्वाचक-मंडल, और सभी निर्वाचित निकायों में मुसलमानों को अधिक स्थान)। मुस्लिम-शिष्टमंडल की माँगें यदि एक ओर ब्रिटिश शासन ने (सन् १९०९ में) लागू कीं, तो दूसरी ओर गोपाल

कृष्ण गोखले जैसे प्रमुख व्यक्ति सहित अनेक हिन्दुओं ने भी उन माँगों पर अपनी सहमति दी। बहुत से हिन्दुओं ने अलग निर्वाचक-मंडल के सिद्धान्त को स्वीकारने के लिए श्री गोखले को दोषी ठहराया है। उनके आलोचक भूलते हैं कि सहमति न व्यक्त करना बुद्धिमानी न होती।" (पृ० २६८)

"—परन्तु, १६०६ में अलग निर्वाचक-मंडल के पक्ष में हिन्दुओं द्वारा दी गयी इस रियायत से भी हिन्दू-मुस्लिम एकता नहीं आ पायी। फिर १६१६ में लखनऊ-समझौता हुआ। इसके अन्तर्गत हिन्दुओं ने मुसलमानों को हर माँग पर संतुष्ट किया। फिर भी दोनों के बीच कोई मेल नहीं हो पाया।" (पृ० २६६)

"श्री गांधी ने भारत के राजनीतिक नेता के रूप में अपने जीवन-कार्य के आरम्भ में ही देशवासियों को इस कथन से चकित कर दिया कि वे छः महीने में स्वराज्य ला सकते हैं, परन्तु यह चमत्कार करने के लिए उन्होंने कुछ शर्तें रखीं। एक शर्त थी हिन्दू-मुस्लिम एकता। श्री गांधी निरंतर कहते रहे हैं कि बिना हिन्दू-मुस्लिम एकता के स्वराज्य नहीं मिल सकता। श्री गांधी ने इस नारे को न केवल भारतीय राजनीति में लोकप्रिय किया, अपितु उसे साकार करने के लिए अथक कार्य भी किया।" (पृ० १३५)

सन् १६१६ में मुसलमानों ने खिलाफ़त आन्दोलन आरम्भ किया, जिसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार पर यह दबाव डालना था कि तुर्की साम्राज्य की अखंडता बनाये रखी जाये और खिलाफ़त (वहाँ के खलीफा की खलीफाई) सुरक्षित रहे। गांधी जी ने इस आन्दोलन का सक्रिय समर्थन करने के अपने निर्णय की घोषणा की। "—ऐसे बहुत लोग थे जिन्हें खिलाफ़त आंदोलन के नैतिक आधार पर सन्देह था और जिन्होंने श्री गांधी को ऐसे आन्दोलन में भाग लेने से विरत करने का प्रयास किया जिसका नैतिक आधार इतना संदेहास्पद हो। परन्तु श्री गांधी ने खिलाफत आंदोलन के न्यायसंगत होने के बारे में स्वयं को इतना अधिक मना लिया था कि वे इस अनुरोध के आगे झुके नहीं। बार-बार वे तर्क देते थे कि यह आन्दोलन न्यायपूर्ण है और इसमें सम्मिलित होना मेरा कर्तव्य है।" (पृ० १३६)

"—खिलाफ़त आंदोलन का साथ देकर श्री गांधी ने दो उद्देश्य पूरे किये। एक, इससे वे कांग्रेस की मुसलमानों को अपने साथ करने की योजना को उसकी पूर्णता तक ले गये। दूसरे, उन्होंने कांग्रेस को देश में एक शक्ति के रूप में उभार दिया, जो मुसलमानों के इसमें सम्मिलित हुए बिना नहीं हो पाता। खिलाफत आंदोलन मुस्लिम-हृदय को राजनीतिक सुरक्षाओं के मुद्दे से अधिक छूता था। परिणामस्वरूप, कांग्रेस से बाहर के मुसलमान भी उसमें चले आये। हिन्दुओं ने

इसका स्वागत किया, क्योंकि इसमें उन्हें ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध एक साझा मोर्चा बनता दिख रहा था, जोकि उनका मुख्य लक्ष्य था।" (पृ० १४२)

"—परन्तु दुर्भाग्य से श्री गांधी की यह आशा कि 'कोई भी सरकार एक पूरे देश की जनता के अहिंसक विरोध को संभवतः झेल नहीं पायेगी', सत्य सिद्ध न हुई। असहयोग आंदोलन आरम्भ करने के एक वर्ष के भीतर ही श्री गांधी को स्वीकारना पड़ा कि मुसलमान अधीर हो उठे हैं और—

"अपने बेसब्र गुस्से (अधीर क्रोध) में मुसलमान कांग्रेस और खिलाफ़त संगठनों से अधिक जानदार (ऊर्जस्वी) और तुरत-फुरत कार्यवाही की माँग करते हैं। मुसलमानों के लिए स्वराज्य का अर्थ है, जो कि होना ही चाहिए, खिलाफ़त के प्रश्न को प्रभावी ढंग से निपटवाने की भारत की योग्यता। अतः मुसलमान अधिक प्रतीक्षा करने से इन्कार करते हैं यदि स्वराज्य-प्राप्ति का अर्थ अनिश्चित विलम्ब या एक ऐसा कार्यक्रम बनाना है जो मुसलमानों को असहाय दर्शक की भाँति तुर्की साम्राज्य को यूरोपीय समुद्र में विलीन होते देखते रहने वाले नपुंसक बना दे।

—परन्तु, मेरी विनम्र राय (धारणा) में स्वराज्य-प्राप्ति खिलाफ़त-सम्बन्धी अन्याय को सुधारने का तीव्रतम उपाय है। इस कारण मेरे लिए स्वराज्य और खिलाफ़त दोनों ही एक दूसरे को पाने के उपाय हैं।"

—मुसलमान श्री गांधी की सलाह सुनने को तैयार न थे। उन्होंने अहिंसा के सिद्धान्त में श्रद्धा रखने से इन्कार कर दिया। वे स्वराज्य की प्रतीक्षा करने को तैयार न थे। वे तुर्की की सहायता करने और खिलाफ़त को बचाने के लिए सबसे त्वरित साधन अपनाने की शीघ्रता में थे। मुसलमानों ने इस व्यग्रता में वही किया जिसका हिन्दुओं को डर था, अर्थात् अफगानों को भारत पर आक्रमण का न्यौता दे दिया। यह जान पाना तो सम्भव नहीं कि अफगानिस्तान के अमीर से खिलाफ़तवादियों की किस सीमा तक वार्ता हो चुकी थी, पर ऐसी योजना पर वे कार्य कर रहे थे, यह निर्विवाद है। भारत पर आक्रमण की यह योजना, कहना आवश्यक नहीं कि अत्यधिक खतरनाक योजना थी, और प्रत्येक समझदार भारतवासी पागलपन की ऐसी योजना से अपने को अलग रखेगा।" (पृ० १४३-४)

गांधी जी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के ध्येय-हेतु इतनी एकनिष्ठ लगन से कार्य किया कि अन्य सभी बातें गौण हो गयीं।

"—यह एक कुख्यात तथ्य है कि कुछ धर्मान्ध मुसलमानों ने ऐसे अनेक विशिष्ट हिन्दुओं की हत्याएं की हैं, जिन्होंने मुस्लिम मजहबी भावनाओं को अपने लेखों

से या शुद्धि-आन्दोलन में भाग लेकर ठेस पहुँचायी।" (पृ० १४६)

डॉ० अम्बेडकर ने गांधी जी को इस बात के लिए दोषी बताया कि उन्होंने इन हत्याओं की निन्दा नहीं की, और वह भी इसलिए कि कहीं ऐसी निन्दा से हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयासों को धक्का न पहुँचे। 'मुसलमानों की किसी भी गलती को माफ कर देने की इस प्रवृत्ति' के भी डॉ० अम्बेडकर आलोचक थे।

गांधी जी के हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने के इन प्रयासों का फल क्या निकला? डॉ० अम्बेडकर के विचार में "इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए यह आवश्यक होगा कि सन् १९२० से १९४० तक के वर्षों में, जो कि श्री गांधी द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए किये गये कठिन परिश्रम के वर्ष थे, दोनों समुदायों के बीच रहे सम्बन्धों की परख की जाये। इन सम्बन्धों का विस्तृत वर्णन भारत-सरकार द्वारा संसद् में भारत की वस्तुस्थिति के बारे में प्रस्तुत वार्षिक प्रतिवेदनों (रिपोर्ट्स) में उपलब्ध है—।" (पृ० १५३) इन प्रतिवेदनों में दोनों समुदायों के बीच हुए खूनी दंगों के विवरण मिलते हैं। इन्हीं दंगों में से एक है १९२० की मोपला हिंसा, "— जो (केरल के) मालाबार क्षेत्र में मोपलों (मुसलमानों) द्वारा हिन्दुओं के ऊपर खून जमा देने वाले अत्याचारों की" हृदय-विदारक कथा है। (पृ० १४७) "—सामूहिक हत्याएं, बलात् धर्मान्तरण, मन्दिरों को अपवित्र करना, महिलाओं का कुत्सित अपमान, —लूट-पाट, आगजनी, विनाश—संक्षेप में, मोपलों ने हिन्दुओं के विरुद्ध पाशविक और बेलगाम बर्बरता से जुड़े सभी घिनौने कार्य बेरोकटोक किये—।" (पृ० १५३)

"हिंसा के इन विवरणों को यदि श्री गांधी द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता के व्यग्र प्रयासों के साथ-साथ देखा जाये, तो यह बहुत ही कष्टदायी और हृदय-विदारक अध्याय होगा। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यह विवरण हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच गृह-युद्ध के बीस वर्षों का अभिलेख है जिसके बीच-बीच में हथियारबन्द शान्ति भी हो जाती थी। (पृ० १७५)

—परन्तु ऐसे लोग भी हैं जो पिछले बीस वर्षों के इस इतिहास के होते हुए भी हिन्दू-मुस्लिम एकता की सम्भावना देखते हैं। उनकी यह मान्यता दो आधारों पर टिकी दिखती है। प्रथम, उनका यह विश्वास दो विरोधी जनसमूहों को एक राष्ट्र में ढाल देने की केन्द्रीय सरकार की क्षमता में है। दूसरे, वे अनुभव करते हैं कि मुस्लिम-माँगों को पूरा कर देना हिन्दू-मुस्लिम एकता लाने का अचूक उपाय है। (पृ० १७८)

—मान लें कि (रोग का) यह निदान सही है, मान लें कि मुस्लिम-माँगें

न्यायसंगत हैं, मान लें कि हिन्दू उनकी माँगें मानने को तैयार है—और ये सभी कल्पनाश्रित विधारणाएं बहुत बड़ी हैं – तो भी एक प्रश्न उठता है कि क्या मुस्लिम राजनीतिक माँगों को पूरा करने से बनने वाली राजनीतिक एकता हिन्दुओं व मुसलमानों के बीच सच्ची एकता स्थापित करा पायेगी ? कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि दोनों समुदायों में राजनीतिक एकता होना ही पर्याप्त है। मैं सोचता हूँ कि यह सबसे बड़ी भ्रान्ति है। उपर्युक्त विचार वाले लोग इतना ही सोचते लगते हैं कि किस प्रकार मुसलमानों को हिन्दुओं की उन माँगों का समर्थन करने के लिए तैयार किया जाये जो उन्होंने ब्रिटिश सत्ता से भारत के लिए औपनिवेशिक स्वायत्तता या पूर्ण स्वाधीनता – समयानुसार या स्थिति को देखते हुए जो भी बन पड़े—प्राप्त करने हेतु रखी थीं। यह नितान्त ही अदूरदर्शी विचार है। मुसलमान किस प्रकार ब्रिटिश राज के समक्ष प्रस्तुत हिन्दू-माँगों का समर्थन करेंगे, यह प्रश्न अपेक्षाकृत अल्प महत्त्व का है। (स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद) वे संविधान के कार्यान्वयन में किस भावना से जुटेंगे? क्या वे इसे किसी अनचाहे सम्बन्ध में फँसे विदेशी के मनोभाव (अन्दाज) से चलायेंगे या फिर सच्चे बन्धुओं की भाँति? अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है। संविधान को सच्चे बन्धुओं की भाँति मिलकर चलाने के लिए केवल राजनीतिक एकता पर्याप्त नहीं, हृदय और आत्मा की सच्ची एकता चाहिए। दूसरे शब्दों में, इसके लिए सामाजिक एकता चाहिए। यदि राजनीतिक एकता ऐसी सच्ची एकता का प्रतिबिम्ब न हो, तो वह व्यर्थ है। वह उतनी ही अस्थिर होती है जितनी दो ऐसे व्यक्तियों के बीच एकता जो मित्र न होते हुए भी एक दूसरे के संधि-मित्र या सखा बन जाते हैं।" (पृ० १८०)

"....इन तीस वर्षों के इतिहास का अवलोकन करने पर यह पूछा जाना स्वाभाविक है कि क्या हिन्दू-मुस्लिम एकता चरितार्थ हुई? क्या इसे स्थापित करने के लिए प्रयत्न नहीं हुए ? क्या कुछ और भी करना शेष है ? पिछले तीस वर्षों का इतिहास प्रदर्शित करता है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित नहीं हो सकी है। इसके विपरीत, आज दोनों के बीच सर्वाधिक वैमनस्य विद्यमान है। उनकी एकता के लिए सच्चे और निरंतर प्रयास हुए हैं, तथा अधिक करने योग्य अब कुछ बचा भी नहीं है, सिवाय इसके कि एक पक्ष दूसरे के आगे पूर्ण आत्म-समर्पण ही कर दे। अब, यदि कोई व्यक्ति, जिसे अनावश्यक रूप से आशावादी होने की आदत नहीं है, यह कहे कि हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयास मृगतृष्णा के समान हैं, और इस विचार को अब त्याग दिया जाना चाहिए, तो किसी में भी यह कहने का साहस नहीं होगा कि वह निराशावादी है या फिर अधीर आदर्शवादी। यह

तो अब हिन्दुओं को बताना है कि क्या वे अपने सभी पिछले प्रयासों का दुर्भाग्यपूर्ण अंत होते हुए भी इस व्यर्थ की लक्ष्य-सिद्धि के प्रयास में लगे रहेंगे, या फिर एकता के पीछे भागना छोड़कर मुसलमानों के साथ किसी अन्य आधार पर समझौता (अर्थात् मुसलमानों के लिए अलग राज्य पाकिस्तान स्वीकार) करने का प्रयास करेंगे?" (पृ० ३०७)

एकता के इन प्रयासों की विफलता के कारण क्या हैं ?

"....हिन्दू-मुस्लिम एकता की विफलता की वास्तविक व्याख्या यह है कि इस बात को समझा ही नहीं गया है कि दोनों समुदायों के बीच की समस्या केवल मतभेद की दीवार खड़ी होना नहीं है और दोनों की शत्रुता के पीछे भौतिक कारण नहीं हैं। यह (शत्रुता) आध्यात्मिक स्वरूप की है। यह ऐसे कारणों से उत्पन्न हुई है जिनकी जड़ें ऐतिहासिक, साम्प्रदायिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विद्वेष में हैं, तथा राजनीतिक विद्वेष जिनकी एक परछाईं-मात्र है। इन कारणों ने असंतोष की गहरी नदी का निर्माण किया है जो अपने उक्त स्रोतों से और भी जल प्राप्त करती हुई सदा उफनती रहती है और सामान्य प्रवाह से बाहर उमड़ती रहती है। किसी भी अन्य स्रोत की जलधारा, चाहे कितनी ही निर्मल क्यों न हो, इससे मिलने पर इसका रंग या प्रवाह बदलने के बजाय स्वयं ही इसकी मुख्यधारा में विलीन होकर खो जाती है। इस जल-प्रवाह ने वैमनस्य की जो गाद बिछायी है, वह गहरी और स्थायी बन गयी है। जब तक यह गाद बढ़ती रहेगी और यह वैमनस्य चलता रहेगा, दोनों समुदायों के बीच शत्रुता के स्थान पर एकता की आशा करना अस्वाभाविक होगा।" (पृ० ३२४)

जो बातें मुस्लिम उद्देश्यों के बारे में हिन्दुओं की आशंकाएं जगाती हैं, उनमें से एक है मुसलमानों की हिन्दू समाज के दबे-पिछड़े वर्गों को इस्लाम मत में परिवर्तित करने की इच्छा।

"....मुसलमानों ने सदा ही दबे-पिछड़े वर्गों की ओर लालसा से देखा है। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच का बहुत कुछ विद्वेष मुसलमानों की इस सोच में से उत्पन्न होता है कि हिन्दू समाज अपने दबे वर्गों को आत्मसात् करके अधिक शक्तिशाली हो जायेगा। सन्१९०९ में मुसलमानों ने एक बड़ा कदम यह सुझाव देकर उठाया कि जनगणना के दौरान दबे वर्गों को हिन्दू के रूप में अंकित न किया जाये। इससे भी दो पग आगे बढ़कर बात मुहम्मद अली ने सन् १९२३ में कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में भाषण देते हुए कही। उन्होंने कहा :

"....अलमों (मुहर्रम से सम्बन्धित) और पीपल के पेड़ों या बाजे-गाजे के

जलूसों के कारण होने वाले झगड़े तो बचकानी बातें हैं। लेकिन साम्प्रदायिक कारनामों को दोस्ताने ढंग से न सँभाला गया, तो ऐसा एक मसला (समस्या) है अवश्य जिसमें से दुश्मनी भरे काम की शिकायत सरलता से पैदा हो सकती है। वह प्रश्न है, दबायी हुई जमातों के धर्मान्तरण का, (जिसका उठना स्वाभाविक है) यदि हिन्दू समाज उन्हें जल्दी से अपने में नहीं मिलाता। ईसाई मिशनरी इस काम में पहले से लगा है, उससे तो कोई नहीं झगड़ता; लेकिन जैसे ही कोई मुस्लिम मिशनरी सोसाइटी इस काम के लिए बनायी जाती है, हिन्दू अखबारों में शोर मचने लगता है। एक अमीर और असरदार शख्स ने, जो इन दबायी हुई जमातों की तबलीग (धर्मान्तरण कराने) के लिए ऐसी मिशनरी सोसाइटी बड़े पैमाने पर चलाने के काबिल हैं, मुझे यह सुझाव दिया है कि प्रमुख हिन्दू महानुभावों के साथ एक समझौते पर पहुँचना मुमकिन (सम्भव) होना चाहिए, जिसके तहत देश को अलग-अलग हिस्सों (भागों) में बाँट लिया जाये, जहाँ हिन्दू और मुसलमान अपने-अपने निर्धारित इलाकों में काम कर सकें (हिन्दू उन्हें आत्मसात् करने और मुसलमान धर्मान्तरित करने के लिए)। हर समुदाय साल भर या लम्बे समय के लिए लक्ष्य बनाये कि कितने लोगों को आत्मसात् या धर्मान्तरित करना है।" (पृ० २३५)

६
साम्प्रदायिक राजनीति के आयाम

डॉ० अम्बेडकर ने मुस्लिम-राजनीति के साम्प्रदायिक आधार का विस्तृत वर्णन किया है। इस वर्णन से मुस्लिम-राजनीति के दो आयाम दृष्टिगोचर होते हैं – आक्रामकता और अलगाववाद।

राजनीतिक आक्रामकता

"सरसरी दृष्टि से देखने पर भी यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि मुसलमानों के प्रति हिन्दू मनोवृत्ति और हिन्दुओं के प्रति मुस्लिम मनोवृत्ति में एक मूलभूत आक्रामक भाव विद्यमान रहता है। हिन्दुओं का आक्रामक भाव एक नयी प्रवृत्ति है जिसे उन्होंने हाल ही में विकसित करना प्रारम्भ किया है। मुसलमानों की आक्रामक भावना उनकी जन्मजात पूँजी है और हिन्दुओं की तुलना में बहुत प्राचीन काल से उनके पास है। ऐसा नहीं है कि हिन्दू समय के साथ-साथ अधिक गति अपनाकर मुसलमान को इस योग्यता में पीछे नहीं छोड़ सकता, परन्तु आज जैसी स्थिति है, मुसलमान इस आक्रामक भाव के प्रदर्शन में हिन्दू को बहुत पीछे छोड़े हुए है।

मुसलमानों की राजनीतिक आक्रामकता का कुछ वर्णन करना आवश्यक है, क्योंकि इस राजनीतिक आक्रामकता ने एक ऐसे रोग को जन्म दिया है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता।

इस मुस्लिम आक्रामकता के बारे में तीन बातें समझने योग्य हैं : पहली है मुस्लिम राजनीतिक माँगों की निरन्तर फैलती सूची। इनका आरम्भ १८९२ में हुआ।" (पृ० २३९)

अधिक से अधिक राजनीतिक सुविधाएँ प्राप्त करने की मुस्लिम-इच्छा को तृप्त करना कितना कठिन है, इसका वर्णन डॉ० अम्बेडकर ने इस प्रकार किया है :

"—गोल मेज सम्मेलन में मुसलमानों ने जितनी माँगें रखीं और जो-जो उनको दे दिया गया, उसे देखते हुए कोई भी यही सोचता कि मुस्लिम माँगें अपनी अन्तिम सीमा प्राप्त कर चुकी हैं और १९३२ का यह समझौता निर्णायक ही होगा। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मुसलमान इससे भी संतुष्ट नहीं हुए हैं। मुस्लिम-हितों

को सुरक्षित करने के लिए एक और नयी सूची भी तैयार लगती है। १९३८ में कांग्रेस और मि० जिन्ना के बीच जो विवाद चला, उसमें मि० जिन्ना को कहा गया कि अपनी माँगें प्रकट करें, जिससे उन्होंने इन्कार कर दिया। किन्तु इसी विवाद में पंडित नेहरू और मि० जिन्ना के बीच हुए पत्र-व्यवहार से ये माँगें भी उजागर हो गयीं। इन्हें पंडित नेहरू ने मि० जिन्ना को भेजे एक पत्र में क्रमबद्ध लिख दिया। उनके अनुसार, आपसी विवाद के मामले, जिन्हें सुलझाया जाना है, निम्नलिखित हैं :

१. सन् १९२९ में मुस्लिम लीग द्वारा तैयार चौदह-सूत्री माँगें।
२. कांग्रेस साम्प्रदायिक पंच-निर्णय (कम्यूनल अवार्ड) के प्रति अपना समस्त विरोध वापस ले और इसे राष्ट्रवाद के विपरीत कहना बन्द करे।
३. सरकारी नौकरियों में मुसलमानों के अंश (हिस्से) को विधिवत् अधिनियमनपूर्वक संविधान में सुनिश्चित किया जाये।
४. मुस्लिम पर्सनल ला (व्यक्तिगत विधि या निजी कानून) और संस्कृति की वैधानिक रूप से सुरक्षा की सुनिश्चितता (गारंटी)।
५. शहीदगंज़ मस्जिद सम्बन्धी आन्दोलन को कांग्रेस अपने हाथ में ले और मुसलमान उस मस्जिद को वापस ले पायें, इसके लिए वह अपना नैतिक दबाव डाले।
६. मुसलमानों के अज़ान देने और अपने मजहब सम्बन्धी रस्मो-रिवाज पूरे करने पर किसी प्रकार की पाबन्दी न हो।
७. मुसलमानों को गोहत्या की आजादी रहे।
८. इस समय (१९३८ में) मुसलमान जिन प्रान्तों में बहुसंख्या में हैं, वहाँ यह बहुसंख्या किसी भी प्रकार के प्रादेशिक पुनर्वितरण या पुनःसमंजन द्वारा प्रभावित न की जाये।
९. 'वन्दे मातरम्' गीत त्याग दिया जाये।
१०. मुस्लिम चाहते हैं कि उर्दू भारत की राष्ट्र-भाषा हो, और कानूनी गारंटी (वैधानिक प्रत्याभूति) चाहते हैं कि उसके प्रयोग में किसी प्रकार की रुकावट नहीं आयेगी।
११. स्थानीय निकायों (लोकल बॉडीज) में मुस्लिम-प्रतिनिधित्व की संख्या साम्प्रदायिक पंचनिर्णय (कम्यूनल अवार्ड) के मूलभूत सिद्धान्तों—अलग निर्वाचक-मंडल और जनसंख्या-आकार—द्वारा ही नियंत्रित हो।
१२. तिरंगे झंडे का रंग बदला जाये, या फिर मुस्लिम लीग के झंडे को समान

सम्मान मिले।

१३. मुस्लिम लीग को भारत के मुसलमानों की एकमात्र आधिकारिक और प्रतिनिधि संस्था के रूप में मान्यता।

१४. मिली-जुली सरकारें बनें।

इस नयी सूची के आ जाने पर अब नहीं कहा जा सकता कि मुसलमान अपनी माँगें बढ़ाने में कहाँ जाकर रुकेंगे। १९३८ से १९३९ के बीच के एक वर्ष में एक अतिरिक्त माँग, वह भी बहुत भारी-भरकम, इस सूची में जोड़ दी गयी और वह है सर्वत्र और हर वस्तु में मुसलमानों के लिए ५० प्रतिशत भाग। इन नयी माँगों में से कुछ तो स्पष्ट ही बेतुकी और, गैर-जिम्मेदाराना न भी सही, तो भी, असंभव तो हैं ही। उदाहरण के लिए, ५० प्रतिशत भागीदारी की या उर्दू को राष्ट्र-भाषा बनाने की माँग। सन् १९२९ में मुसलमानों का आग्रह था कि विधान-सभाओं में स्थानों का विभिन्न समुदायों में आबंटन करते समय बहुसंख्या वाले पक्ष को अल्पमत या बराबरी पर न लाया जाय। उन्हीं के द्वारा प्रस्तुत इस सिद्धान्त को वे स्वयं अपनी नयी माँग के द्वारा नकार रहे हैं, जिसे माने जाने पर बहुमत बराबरी पर आ जायेगा। सन् १९२९ में मुसलमानों ने यह मान लिया था कि अन्य अल्पसंख्यकों को भी सुरक्षा की आवश्यकता है और यह सुरक्षा उन्हें भी उसी प्रकार मिले जैसे कि मुसलमानों को। मुसलमानों और अन्य अल्पसंख्यकों के बीच अन्तर केवल सुरक्षा की मात्रा का ही था। मुसलमान अपने अधिक राजनीतिक महत्त्व के आधार पर अन्य अल्पसंख्यकों से अधिक सुरक्षा माँगते थे। मुसलमानों ने अन्य अल्पसंख्यकों के लिए सुरक्षा की आवश्यकता और यथेष्टता को भी नकारा नहीं। परन्तु, अपने लिए ५० प्रतिशत की इस नयी माँग से मुसलमान न केवल हिन्दुओं को बहुमत के स्तर से अल्पमत में परिवर्तित करना चाहते हैं, बल्कि अन्य अल्पसंख्यकों के राजनीतिक अधिकारों में भी सैंध लगा रहे हैं। मुस्लिम आज हिटलर की भाषा बोल रहे हैं, और जैसे हिटलर ने जर्मन प्रभुत्व के लिए अधिक से अधिक भूभाग चाहा, वैसे ही वे भी माँग रहे हैं, क्योंकि, ५० प्रतिशत भागीदारी की माँग कुछ और नहीं, "जर्मनी ही सर्वोपरि," और "निवास-योग्य भूमि" जैसी जर्मन घोषणाओं का ही प्रतिरूप है, जिसे वे अन्य अल्पसंख्यकों की चिन्ता छोड़कर अपने लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।" (पृ० २५३-५)

"दूसरी समझने योग्य बात है, मुसलमानों में हिन्दुओं की दुर्बलताओं का अनुचित लाभ उठाने की भावना। यदि हिन्दू किसी बात पर आपत्ति करते हैं तो मुसलमान उसी बात पर आग्रह करने की नीति बनाने लगते हैं, और यह आग्रह

तभी छोड़ने को तैयार होते हैं जब हिन्दू उसके बदले किसी अन्य सुविधा के रूप में उसका मूल्य चुकाने को तैयार हो जाते हैं। पृ० २५६)

—अनुचित लाभ उठाने की इस भावना का एक उदाहरण है मुसलमानों का गो-हत्या करने, और मस्जिदों के सामने संगीत पर प्रतिबन्ध लगाने का आग्रह। इस्लामी कानून कुर्बानी के लिए गो-हत्या का आग्रह नहीं करता, और कोई भी मुसलमान हज के लिए जाने पर मक्का या मदीना में गाय की कुर्बानी नहीं करता। परन्तु, भारत में वे अन्य किसी पशु की कुर्बानी से संतुष्ट नहीं होना चाहते। मस्जिदों के सामने संगीत गाने-बजाने पर किसी भी मुस्लिम देश में आपत्ति नहीं की जाती। अफगानिस्तान जैसे देश तक में भी, जो सम्प्रदाय-निरपेक्ष नहीं है, मस्जिद के सामने संगीत पर आपत्ति नहीं की जाती। पर, भारत में मुसलमान इस पर प्रतिबन्ध लागू करने का आग्रह अवश्य करेंगे, कुछ और नहीं तो केवल इसलिए कि हिन्दू इसे अपना (शोभायात्राओं में) अधिकार मानते हैं।

तीसरी समझने योग्य बात है, मुसलमानों द्वारा राजनीति में हिंसक कार्यपद्धति अपनाना। हिंसक उपद्रव इस बात का पर्याप्त संकेत हैं कि गुंडागर्दी राजनीति में उनकी रणनीति का स्थायी भाग बन चुकी है। ऐसा लगता है कि वे सोचे-समझे ढंग से उन्हीं रीति-नीतियों का अनुकरण कर रहे हैं जो सुडेटन-जर्मन लोगों ने चेक लोगों के विरुद्ध अपनाये थे।" ("अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के १९३६ के कराची अधिवेशन में मि० जिन्ना और सर अब्दुल्ला हारून, दोनों ने भारत के मुसलमानों को इस्लामी जगत् के 'सुडेटन-वासी' बताया और कहा कि ये मुसलमान वैसा सब करने में समर्थ हैं जैसा सुडेटन-जर्मन लोगों ने चेकोस्लोवाकिया के लोगों के साथ किया।") पृ. (२५९-६०)

चेकोस्लोवाकिया के सुडेटन लैंड क्षेत्र में अधिकांश निवासी जर्मन मूल के थे। उन्होंने जातीय आधार पर चेकोस्लोवाकिया से अलग होने का अभियान छेड़ा, जिसका जर्मनी की नाज़ी पार्टी ने पूरा समर्थन किया।

"जब तक मुसलमान आक्रामक मुद्रा में होते थे और हिन्दू निष्क्रिय रहते थे, तब तक वे दंगों में मुसलमानों से अधिक हानि उठाते थे। परन्तु अब ऐसा नहीं होता। हिन्दुओं ने प्रतिकार करना सीख लिया है और उन्हें भी अब किसी मुसलमान पर शस्त्रघात करने में कोई अफसोस नहीं होता। बदला लेने की इस भावना ने गुंडागर्दी के प्रत्युत्तर में गुंडागर्दी का भद्दा दृश्य सामने ला खड़ा किया है।" (पृ० २५९-६०)

कांग्रेस-नेतृत्व का उस आक्रामक मुस्लिम-राजनीति के प्रत्युत्तर में क्या रवैया

रहा? केवल तुष्टीकरण।

डॉ० अम्बेडकर कहते हैं कि कांग्रेस ने "मुसलमानों को राजनीतिक और अन्य रियायतें देकर उन्हें सहन करने और खुश रखने" की नीति अपनायी है, "क्योंकि वे समझते हैं कि मुसलमानों के समर्थन के बिना वे अपने मनोवांछित लक्ष्य स्वतन्त्रता को पा नहीं सकते। —मुझे लगता है कि कांग्रेस ने दो बातें समझी नहीं हैं। पहली तो यह कि तुष्टीकरण और समझौते में अन्तर होता है, और यह एक महत्त्वपूर्ण अन्तर है। तुष्टीकरण का अर्थ है, एक आक्रामक व्यक्ति या समुदाय को मूल्य देकर अपनी ओर करना; और यह मूल्य होता है उस आक्रमणकारी द्वारा किये गये, निर्दोष लोगों पर, जिनसे वह किसी कारण से अप्रसन्न हो, हत्या, बलात्कार, लूट-पाट और आगज़नी जैसे अत्याचारों को अनदेखा करना। दूसरी ओर, समझौता होता है दो पक्षों के बीच कुछ मर्यादाएं निश्चित कर देना जिनका उल्लंघन कोई भी पक्ष नहीं कर सकता। तुष्टीकरण से आक्रान्ता की माँगों और आकांक्षाओं पर कोई अंकुश नहीं लगता, समझौते से लगता है।

दूसरी बात, जो कांग्रेस समझ नहीं पायी है, यह है कि छूट देने की नीति ने मुस्लिम आक्रामकता को बढ़ावा दिया है; और, अधिक शोचनीय बात यह है कि मुसलमान इन रियायतों का अर्थ लगाते हैं हिन्दुओं की पराजित मानसिकता और सामना करने की इच्छा-शक्ति का अभाव। तुष्टीकरण की यह नीति हिन्दुओं को उसी भयावह स्थिति में फँसा देगी जिसमें 'मित्र देश' (द्वितीय विश्व-युद्ध में ब्रिटेन, फ्रांस आदि) हिटलर के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाकर स्वयं को पाते थे।" (पृ० २६०-१)

इस्लामी अलगाववाद

१९२० और '३० के दशकों में मुस्लिम नेताओं के राजनीतिक विचार और व्यवहार को उजागर करने के लिए डॉ० अम्बेडकर ने अनेक महत्त्वपूर्ण मुस्लिम नेताओं के विचारों के उदाहरण दिये हैं। इनमें से तीन नेताओं के विचारों की झलक प्रस्तुत है:—

मौलाना अबुल कलाम आजाद (कलकत्ता, सन् १९२७, मुस्लिम लीग अधिवेशन के अध्यक्ष के रूप में): (मुस्लिम-बहुल प्रान्तों की संख्या को तीन अतिरिक्त प्रान्त बनाकर पाँच तक करने की योजना के संदर्भ में मौलाना आजाद इस योजना के लाभ मुसलमानों को समझा रहे हैं कि यह योजना मुस्लिम-हितों को बढ़ाने के लिए एक नये प्रकार का हथियार है, और वह है हिन्दू-बहुल प्रान्तों में मुसलमानों के विरुद्ध कुछ भी घटित होने पर प्रतिशोध के रूप में मुस्लिम-बहुल

प्रान्तों में निर्दोष हिन्दुओं को दंड देने का अवसर)

"लखनऊ-समझौते द्वारा उन्होंने (मुसलमानों ने) अपने हित बेच डाले थे। पिछले मार्च महीने के दिल्ली-प्रस्तावों ने पहली बार भारत के मुसलमानों के असली हकों (वास्तविक अधिकारों) की मान्यता का मार्ग खोला है। सन् १९१६ के (लखनऊ) समझौते के द्वारा दिये गये अलग निर्वाचक-मंडल से तो केवल मुस्लिम प्रतिनिधित्व ही मिल सकता था, परन्तु, मुस्लिम समुदाय के जिन्दा रहने के लिए सबसे महत्त्व की बात थी उनके संख्या-बल को स्वीकारा जाना। दिल्ली-प्रस्तावों ने ऐसी परिस्थिति बनाने का मार्ग खोला है जो भारत की भावी व्यवस्था में मुसलमानों को उनका उचित अंश दिला पायेगी। बंगाल और पंजाब में उनकी मौजूदा (वर्तमान) थोड़ी सी बहुसंख्या तो जनगणना के आँकड़े मात्र थी (और इसलिए कोई विशेष अर्थ नहीं रखती), लेकिन दिल्ली-प्रस्तावों ने उन्हें पहली बार पाँच प्रान्त सौंप दिये हैं जिनमें से तीन (सिंध, सीमा-प्रान्त और बलूचिस्तान) में वास्तविक भारी मुस्लिम-बहुमत है। यदि मुसलमान इस बड़ी प्रगति को भी पहचान नहीं पा रहे हैं तो वे जीवित रहने योग्य नहीं हैं। अब कुल नौ हिन्दू-प्रान्तों के मुकाबले पाँच मुस्लिम प्रान्त हैं और जो भी व्यवहार इन नौ प्रान्तों में मुसलमानों के साथ हिन्दू करते हैं, वही व्यवहार हिन्दुओं के साथ पाँच मुस्लिम-प्रान्तों में किया जायेगा। क्या यह बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं है? क्या मुस्लिम अधिकारों का पुरजोर दावा करने के लिए यह एक नया हथियार हाथ नहीं लग गया है?" (पृ० ९७)

डॉ० सैफुद्दीन किचलू (लाहौर, सन् १९२५) : "यदि इस देश से ब्रिटिश राज हटाकर हम यहाँ स्वराज्य स्थापित करते हैं और अफगान या और कोई मुस्लिम भारत पर हमला करते हैं, तो हम मुसलमान इसका विरोध करेंगे और देश को आक्रमण से बचाने के लिए अपने सारे बेटों को कुर्बान कर देंगे। लेकिन, मैं एक बात का साफ-साफ ऐलान कर देना चाहता हूँ। सुनो, मेरे हिन्दू-भाइयो, बहुत ध्यान से सुनो! यदि आप लोग हमारे तंजीम (संगठन) आंदोलन में बाधा डालोगे और हमारे हक (अधिकार) हमें नहीं दोगे तो हम अफगानिस्तान या दूसरी किसी मुस्लिम ताकत से एकता कर लेंगे और इस देश में अपनी हुकूमत (शासन) कायम कर लेंगे।" (पृ० २९४)

मौलाना आजाद सोभानी (सिल्हट, सन् १९३८): "—अंग्रेज धीरे-धीरे निर्बल होते जा रहे हैं और निकट भविष्य में हिन्दुस्तान से चले जायेंगे। इसलिए, यदि हमने इस्लाम के सबसे बड़े **शत्रु हिन्दुओं से** अभी से संघर्ष करके उन्हें कमजोर न किया, तो वे न केवल हिन्दुस्तान में रामराज्य स्थापित कर देंगे, बल्कि धीरे-धीरे

सारी दुनिया में फैल जायेंगे। यह हिन्दुस्तान के नौ करोड़ मुसलमानों पर निर्भर है कि वे हिन्दुओं को शक्तिशाली बनायें या कमजोर। इसलिए, हर सच्चे मुसलमान का फर्ज (कर्तव्य) है कि वह मुस्लिम लीग में शामिल होकर संघर्ष जारी रखे, ताकि हिन्दू यहाँ जम न पायें और अंग्रेजों के जाते ही हिन्दुस्तान में मुस्लिम-राज स्थापित कर दिया जाये। —हिन्दुस्तान के आजाद (स्वतंत्र) होने से पहले ही हिन्दुओं के साथ किसी न किसी प्रकार की समझदारी ताकत से या दोस्ताना अंदाज में (बल से या मैत्रीभाव से) कायम की जानी चाहिए, नहीं तो हिन्दू, जो सात सौ वर्षों तक मुसलमानों के गुलाम रहे, मुसलमानों को अपना गुलाम बना लेंगे।" (पृ० २६५-६)

"हिन्दू जानते हैं कि मुसलमानों के मन-मस्तिष्क में क्या चल रहा है, और वे इस सम्भावना से भयभीत हैं कि मुसलमान स्वतत्रता का उपयोग कहीं उन्हें गुलाम बनाने के लिए न कर लें। इसी कारण वे स्वंतन्त्रता को भारत के राजनीतिक उत्थान का लक्ष्य बनाने के लिए उत्साहित नहीं हैं। ये आशंकाएं उन लोगों की नहीं हैं जो उचित निष्कर्ष निकालने के योग्य नहीं। इसके विपरीत, जिन हिन्दुओं ने स्वतन्त्रता के लक्ष्य की ओर बढ़ने की बुद्धिमानी के बारे में शंकाएं व्यक्त की हैं, वे लोग हैं जो मुस्लिम नेताओं से अपने सम्पर्कों के कारण अपनी धारणा व्यक्त करने के लिए पर्याप्त योग्य हैं।

श्रीमती ऐनी बेसैण्ट लिखती हैं: "एक अन्य प्रश्न भारत के मुसलमानों के बारे में उठता है। यदि हिन्दुओं और मुसलमानों के आपसी सम्बन्ध (सन् १९१६ के) लखनऊ-समझौते के दिनों के जैसे रहते तो यह प्रश्न उतना आवश्यक न होता, यद्यपि स्वतन्त्र भारत में कभी न कभी यह उठता अवश्य। परन्तु, खिलाफ़त आन्दोलन (सन् १९१९) के बाद से बहुत कुछ बदल गया है, और खिलाफ़त आन्दोलन को प्रोत्साहन मिलने से भारत के लिए उत्पन्न हुए अनेक दुष्परिणामों में से एक यह है कि इस्लाम में विश्वास न रखने वालों के विरुद्ध मुसलमानों की घृणा की अन्दरूनी भावना पूरी निर्लज्जता के साथ नग्न रूप में उभर आयी है, जैसी कि वह बीते समय में थी। हमने सक्रिय राजनीति में तलवार के बल पर बढ़ने वाले इस्लाम के प्राचीन रूप को पुनर्जीवित होते देख लिया है। हमने देख लिया है कि सदियों की विस्मृति में से वही पुरानी एकमात्रिकता निकलकर बाहर आ गयी है जो अरब के द्वीप जज़ीरुल-अरब को ऐसा पवित्र स्थल मानती है जहाँ किसी गैर-मुस्लिम के अपवित्र पाँव पहुँच नहीं सकते; हमने मुस्लिम नेताओं को कहते सुना है कि यदि अफगानों ने भारत पर आक्रमण किया तो वे अपने

मुसलमान भाइयों का साथ देंगे और शत्रुओं से मातृभूमि की रक्षा करते हिन्दुओं की हत्या करेंगे; हम देखने पर विवश हुए हैं कि मुसलमानों की प्रथम निष्ठा (पहली वफादारी) मुस्लिम देशों के प्रति है, अपनी मातृभूमि के प्रति नहीं। —भारत के स्वतन्त्र होने पर, मुस्लिम समुदाय देश की स्वतन्त्रता के लिए सामने खड़ी विपत्ति (खतरा) बन जायेगा, क्योंकि अन्जान जनसाधारण तो वही मानेंगे जो उन्हें पैगम्बर के नाम से बताया जायेगा और ऐसा करने वालों के ही पीछे वे चलेंगे। वे अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, ईरान, इराक, अरब, तुर्की, मिस्र, और मध्य-एशिया के मुस्लिम कबीलों के साथ मिलकर भारत में मुस्लिम-राज लाने के लिए विद्रोह करेंगे। —हम सोचते थे कि भारत के मुसलमान अपनी मातृभूमि के प्रति निष्ठावान् हैं और, निस्सन्देह, अब भी हमें आशा है कि शिक्षित लोगों में से अनेक इस मुस्लिम-विद्रोह को रोकने का प्रयत्न करेंगे। परन्तु, वे प्रभावी प्रतिरोध कर पाने के लिए बहुत कम हैं, और उनको दीन के गद्दार बताकर कत्ल कर दिया जायेगा। मालाबार (की मोपला मुसलमानों की हिंसा) ने हमें बता दिया है कि इस्लामी राज का अर्थ आज भी क्या है, अतः हम भारत में 'खिलाफ़त राज' का एक और नमूना नहीं देखना चाहते। मालाबार से बाहर के मुसलमानों को मोपलों के प्रति कितनी सहानुभूति है, यह इस बात से सिद्ध है कि उनके बचाव की कितनी तैयारी की गयी—स्वतन्त्र भारत के बारे में विचार करते हुए हमें मुस्लिम-राज के खतरे को भी ध्यान में रखना होगा।"

इसी प्रकार का भय लाला लाजपत राय ने श्री चितरंजन दास को लिखे पत्र में व्यक्त किया था :

"कुछ समय से एक अन्य बात भी मुझे बहुत अधिक चिन्तित कर रही है, जिस पर, मैं चाहता हूँ, आप भी सावधानी से विचार करें, और वह है हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रश्न। पिछले छः महीनों में मैंने अपना अधिकांश समय मुस्लिम इतिहास और कानून के अध्ययन में लगाया है, और (उन्हें देखते हुए) मैं यही सोचता हूँ कि यह (हिन्दू-मुस्लिम एकता) न तो सम्भव है, न ही व्यावहारिक। —मैं तो केवल आशा कर सकता हूँ कि मुस्लिम कानून की मेरी समझ गलत है, और इस बात के लिए आश्वस्त हो पाने पर (कि मैंने इन्हें गलत समझा) मुझे सबसे बड़ी शान्ति मिलेगी। परन्तु, यदि मेरी समझ सही है, तो इसका अर्थ होगा कि हम ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध तो एकजुट हो सकते हैं, पर, स्वतन्त्र भारत को ब्रिटिश पद्धति या लोकतांत्रिक पद्धति से शासित करने के लिए एकजुट नहीं हो सकते। तो फिर इसका उपाय क्या है? मुझे भारत के सात करोड़ (मुसलमानों) का भय नहीं है,

परन्तु मैं सोचता हूँ कि भारत के सात करोड़ के साथ अफगानिस्तान, मध्य एशिया, अरब, इराक और तुर्की की हथियारबन्द सेनाओं के मिल जाने से स्थिति दुस्साध्य हो जायेगी।"

१६२४ में एक बंगला समाचार-पत्र के सम्पादक ने कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर से एक साक्षात्कार किया। इस साक्षात्कार के वृत्त में लिखा है :

"—कवि के विचार में एक अन्य बहुत महत्त्वपूर्ण कारण, जो हिन्दू-मुस्लिम एकता का एक यथार्थ बनना असम्भव किये हुए है, यह है कि मुसलमान अपनी राष्ट्रभक्ति किसी एक देश तक सीमित नहीं रख सकते। कवि ने कहा कि उन्होंने कई मुसलमानों से स्पष्ट शब्दों में पूछा कि क्या किसी मुस्लिम देश द्वारा भारत पर आक्रमण होने पर वे हिन्दुओं के साथ मिलकर अपने साझे स्वदेश की रक्षा के लिए आगे आयेंगे? वे (रवीन्द्रनाथ ठाकुर) उनके उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हो पाये। कवि ने कहा कि वे निश्चित रूप से कह सकते हैं कि मुहम्मद अली जैसे व्यक्तियों तक ने घोषणा की थी कि किसी भी परिस्थिति में किसी भी मुसलमान को, चाहे उसका देश कोई भी हो, यह अनुमति नहीं है कि वह किसी दूसरे मुसलमान के विरुद्ध खड़ा हो।" " (पृ० २६६-६)

"—कहा जाता है कि हिन्दू विचारधारा लोगों में भेद-भाव पैदा करती है, और इसकी तुलना में इस्लामी विचारधारा लोगों को जोड़ती है। इस बात में पूरी सच्चाई नहीं है, क्योंकि इस्लाम लोगों को बाँटता भी उतनी ही कठोरता से है जितना वह जोड़ता है। इस्लाम एक बन्द (सीमित) संघटन है तथा मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के बीच जो भेद-भाव वह करता है, वह बहुत ही ठोस, वास्तविक आचरण में उतारा हुआ और अत्यधिक वैमनस्यकारी है। इस्लाम का भाईचारा पूरी मानवता का भाईचारा नहीं है। मुसलमानों का यह भाईचारा केवल मुसलमानों के लिए ही है। उसमें आपसी बन्धुत्व तो है, पर इसका लाभ केवल इसी सीमित संघटन के भीतर रहने वालों के लिए है। जो इस संघटन से बाहर हैं, उनके लिए तो केवल तिरस्कार और शत्रुता है। इस्लाम में दूसरी कमी यह है कि यह व्यवस्था है सामाजिक नियंत्रण की, और, इस नाते यह देशपरक स्व-शासन की व्यवस्था से मेल नहीं खाती, क्योंकि मुसलमान की निष्ठा उसके निवास के देश के प्रति नहीं होती, जो कि उसी का है, बल्कि उसके मजहबी ईमान से जुड़ी होती है। —जहाँ भी इस्लाम का शासन है, वहीं उसका देश है। दूसरे शब्दों में, भारत को अपनी मातृभूमि मानने और हिन्दुओं को अपने बन्धु-बान्धव मानने की अनुमति इस्लाम एक पक्के मुसलमान को कभी नहीं देगा। शायद यही

कारण है कि मौलाना मुहम्मद अली जैसे महान् हिन्दुस्तानी, पर पक्के मुसलमान ने अपने दफन के लिए भारत-भूमि को नहीं, यरूशलम को ही पसन्द किया।" (पृ०३२५)

मुसलमानों के प्रत्येक राजनीतिक कार्य के पीछे आधारभूत प्रेरणा लोगों के सांसारिक जीवन में प्रगति लाना नहीं होती। बल्कि, मुसलमानों की मुख्य चिन्ता यह होती है कि अमुक कार्य इस्लाम की शक्ति को बढ़ायेगा या नहीं और यह कि हर मुस्लिम के लिए निर्धारित इस्लामी कर्तव्य को पूरा करने में वह सहायक होगा या नहीं? यदि वर्तमान समय में धर्म-निरपेक्ष राजनीतिक शक्तियों पर मुसलमानों का तुष्टीकरण करने का आरोप लगता रहा है, या डॉ० अम्बेडकर ने कांग्रेस-नेतृत्व पर मुसलमानों का तुष्टीकरण करने का आरोप लगाया, तो ये आरोप इस चिन्ता को व्यक्त करने के लिए ही लगाये जाते हैं कि मुसलमानों को धार्मिक स्वतन्त्रता के नाम पर अपने कट्टरवादी उद्देश्य पूरे करने की छूट रहती है। जिस बात को ध्यान से नहीं हटाया जाना चाहिए, वह यह है, जैसा डॉ० अम्बेडकर ने लिखा है, कि "मुस्लिम राजनीतिक नेता जीवन की सम्प्रदाय-निरपेक्ष भौतिक आवश्यकताओं को अपनी राजनीति का आधार नहीं बनाते, क्योंकि उन्हें लगता है कि ऐसा करने से मुस्लिम समुदाय हिन्दुओं के विरुद्ध अपने संघर्ष में दुर्बल पड़ने लगता है।" (पृ० २२६)

"मुसलमानों की मुख्य चिन्ता लोकतंत्र नहीं है। उनकी मुख्य चिन्ता यह है कि बहुमत के शासन वाला लोकतंत्र हिन्दुओं के विरुद्ध मुसलमानों के संघर्ष में मुसलमानों पर क्या प्रभाव डालेगा? इससे उनकी शक्ति बढ़ेगी, या वे दुर्बल होंगे? यदि लोकतंत्र के रहने से वे (हिन्दुओं के विरुद्ध अपनी लड़ाई में) दुर्बल पड़ते हों तो वे लोकतंत्र को नहीं रखना चाहेंगे।" (पृ० २२७)

डॉ० अम्बेडकर की इन टिप्पणियों से स्पष्ट है कि मुस्लिम समुदाय की आधारभूत कामनाओं का स्वरूप साम्प्रदायिक है। अतः मुस्लिम-तुष्टीकरण का जो आरोप धर्म-निरपेक्ष राजनीतिक तत्त्वों के विरुद्ध लगाया जाता है, उसको मिथ्या सिद्ध करने के लिए ये धर्म-निरपेक्ष तत्त्व बतायें कि क्या उन्होंने मुस्लिम समुदाय की साम्प्रदायिकता को अधिक बलवती नहीं किया है? तथा, क्या उन्होंने मुस्लिम समुदाय द्वारा समय-समय पर उठायी गयी साम्प्रदायिक माँगों का कभी भी सार्थक प्रतिरोध किया है?

७

जनसंख्या का आदान-प्रदान

डॉ० अम्बेडकर हिन्दुओं व मुसलमानों के बीच विद्यमान गहरे वैमनस्य से बहुत चिन्तित रहते थे, क्योंकि इसके कारण आये दिन साम्प्रदायिक दंगे होते रहते थे। वे इस साम्प्रदायिक वैमनस्य को दूर करना बहुत आवश्यक समझते थे ताकि लोग अपने बहुआयामी विकास के लिए परिश्रम करने के अवसर पा सकें। डॉ० अम्बेडकर, एक यथार्थवादी होने के नाते, दोनों समुदायों के बीच की गहरी खाई से आँख नहीं मूँद लेना चाहते थे, बल्कि वे समस्या का स्थायी समाधान चाहते थे। इसी संदर्भ में उन्होंने भारत और पाकिस्तान को यथासंभव एकरूप बनाने के लिए दोनों के बीच जनसंख्या के आदान-प्रदान की सम्भावना की चर्चा की। पाकिस्तान बनाने की माँग का समर्थन करते हुए उन्होंने लिखा : "—यह प्रश्न तो पूछा ही जायेगा कि पाकिस्तान बन जाने पर हिन्दुस्थान में रह जाने वाले मुसलमानों की स्थिति क्या बनेगी? यह प्रश्न बहुत स्वाभाविक है, क्योंकि ऐसा लगता है पाकिस्तान की योजना मुस्लिम-बहुसंख्या वाले क्षेत्रों के लिए है, जहाँ उन्हें सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है और मुस्लिम-अल्पसंख्या वाले क्षेत्रों की उपेक्षा करती है, जहाँ उन्हें सुरक्षा की आवश्यकता हो सकती है। पर, विचारणीय बात यह है कि इस प्रश्न को उठायेगा कौन? निश्चित है कि हिन्दू नहीं उठायेंगे। हिन्दुस्थान या पाकिस्तान के केवल मुसलमान ही इसे उठायेंगे। यही प्रश्न पाकिस्तान की माँग के समर्थक रहमत अली से भी पूछा गया, और उन्होंने उत्तर में कहा : "पाकिस्तान बनने से हिन्दुस्तान के साढ़े चार करोड़ मुसलमानों की हालत (स्थिति) पर क्या असर पड़ेगा? सच्चाई यह है कि उनकी फिक्र (चिन्ता) मेरे लिए सिर्फ बिछुड़ने की फिक्र जैसी नहीं है। वे तो हमारे जिस्म और हमारी रूह के टुकड़े हैं। न हम उन्हें कभी भूल सकते हैं, न वे हमें। उनकी आज की हालत और आगे की हिफाजत (सुरक्षा) हमारे लिए हमेशा बहुत अहम (महत्त्वपूर्ण) मामले रहेंगे। जैसे हालात आज हैं, पाकिस्तान बनने से हिन्दुस्तान के मुसलमानों की हालत पर कोई बुरा असर नहीं पड़ेगा। आबादी (जनसंख्या) के हिसाब (चार हिन्दुओं के अनुपात में एक मुसलमान) से भी उन्हें विधान-सभाओं और सरकार में इतनी हिस्सेदारी मिलती रहेगी जितनी आज मिलती है। और, आगे की

हिफाजत का जहाँ तक सवाल (प्रश्न) है, हम तो बस एक ही असरदार गारंटी दे सकते हैं--जैसे को तैसा। इसलिए, हम पाकिस्तान में गैर-मुसलमानों को वे सभी हिफाजतें देने का वायदा करते हैं जो हमारी मुस्लिम माइनारिटी (अल्पसंख्यकों) को हिन्दुस्तान में मिलेंगी। पर, जिस बात से हम सबसे ज्यादा तसल्ली में हैं वह यह है कि वे (हिन्दुस्तान के मुसलमान) इस बात को अच्छी तरह समझते हैं कि हम पाकिस्तान का ऐलान मिल्लत के सबसे ऊँचे फायदे (हितों) के लिए कर रहे हैं। यह उनका भी उतना ही होगा जितना हमारा। जबकि हमारे लिए यह एक कौमी किला (राष्ट्रीय दुर्ग) होगा, उनके लिए यह जज्बाती आसरा (मनोवैज्ञानिक सम्बल) होगा। जब तक उनका यह आसरा बना रहता है, सब कुछ हिफाजत से रहेगा। एक बार यह गया, तो सब कुछ बर्बाद हो जायेगा।"

हिन्दुस्थान के मुसलमानों का उत्तर भी इतना ही स्पष्ट है। वे कहते हैं, "मुसलमानों के हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में बँट जाने से हम कमजोर नहीं पड़ते। भारत की पूर्वी और पश्चिमी सीमाओं पर अलग इस्लामी राज्य होने से हम ज्यादा सुरक्षित रहेंगे, न कि उनके हिन्दुस्तान में बने रहने से।" कौन कहेगा कि वे गलत कह रहे हैं? क्या यह सिद्ध नहीं हो चुका कि सुडेटन-जर्मन लोग चेकोस्लोवाकिया में (अपने अलगाववादी आंदोलन के दौरान) अपनी सुरक्षा स्वयं जितनी नहीं कर सकते थे, उससे अच्छी सुरक्षा जर्मनी ने एक बाहरी शक्ति के रूप में उनको प्रदान की? (ऐसा प्रतीत होता है कि मुस्लिम लीग के नेताओं ने सुडेटन-जर्मनों की सुरक्षा के लिए चेकोस्लोवाकिया के विरुद्ध हिटलर द्वारा अपनाये गये धींगामुश्ती के हथकंडों का गहराई से अध्ययन किया है और साथ ही इन हथकंडों की शिक्षा भी ले ली है।)

जो भी हो, हिन्दुओं का सम्बन्ध इस प्रश्न से नहीं है। जिस प्रश्न से उनका सम्बन्ध है, वह यह है कि किस सीमा तक भारत में साम्प्रदायिक समस्या पाकिस्तान के बन जाने से दूर हो पायेगी? यह बहुत उचित प्रश्न है और इस पर विचार होना ही चाहिए। यह मानना पड़ेगा कि पाकिस्तान बनने से भारत की साम्प्रदायिक समस्या दूर नहीं हो पायेगी। जबकि सीमाओं के पुनर्निर्धारण से पाकिस्तान को जनता के स्वरूप की दृष्टि से एकरूप बनाया जा सकता है, हिन्दुस्थान तो मिश्रित देश ही रहेगा। हिन्दुस्थान में मुसलमान देश भर में फैले हुए हैं, और, यद्यपि उनका अधिकांश भाग नगरों-कस्बों में है, किसी भी प्रकार का सीमा-पुनर्निर्धारण हिन्दुस्थान को एकरूप नहीं बना सकता। हिन्दुस्थान को एकरूप बनाने का एकमात्र उपाय है जनसंख्या का आदान-प्रदान। जब तक ऐसा नहीं होता, मानना पड़ेगा

कि पाकिस्तान बनाकर भी हिन्दुस्थान में बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक की समस्या पहले जैसी ही बनी रहेगी, और हिन्दुस्थान की राजनीति में टकराव पैदा करती रहेगी।" (पृ० १०२-४)

"—जो लोग जनसंख्या की अदला-बदली के विचार पर नाक-भौं चढ़ाते हैं, अच्छा होगा, वे तुर्की, ग्रीस और बल्गारिया के बीच उठी अल्पसंख्यकों की समस्या के इतिहास का अध्ययन करें। वे पायेंगे कि इन देशों ने समझ लिया था कि अल्पसंख्यकों की समस्या का प्रभावी समाधान जनसंख्या की अदला-बदली में ही है। इन तीन देशों ने जो बीड़ा उठाया, वह कोई साधारण कार्य नहीं था। इस कार्य में उन्हें दो करोड़ लोगों को एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर बसाना था। परन्तु, बिना धैर्य खोये, इन तीनों ने मिलकर यह कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न किया, क्योंकि वे अनुभव करते थे कि साम्प्रदायिक शान्ति किसी भी अन्य बात से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

अल्पसंख्यकों का पारस्परिक हस्तांतरण ही साम्प्रदायिक शान्ति के लिए स्थायी समाधान है, इसमें सन्देह नहीं, और जब ऐसा ही है तो कोई कारण नहीं कि हिन्दू व मुसलमान उन्हीं सुरक्षात्मक उपायों को अपनाने का प्रयास करते रहें जो असुरक्षित सिद्ध हो चुके हैं। जब तुर्की, ग्रीस और बल्गारिया जैसे छोटे देश सीमित साधनों के रहते भी यह कार्य पूरा कर सके तो कोई कारण नहीं कि भारतीय यह कार्य सम्पन्न नहीं कर सकते।" (पृष्ठ १०२)

एक अन्य स्थान पर डॉ० अम्बेडकर ने लिखा है :

"—मैं भारत का मुस्लिम और गैर-मुस्लिम, ऐसे दो भागों में बँटवारा पसन्द करूंगा, क्योंकि दोनों की सुरक्षा का सबसे निश्चित और निष्कंटक उपाय यही है।" (पृ० ३६४)

८

यदि पाकिस्तान न बनता

पाकिस्तान बनाने की मुस्लिम माँग का हिन्दुओं ने व्यापक विरोध किया था। डा. अम्बेडकर ने इस विषय के विभिन्न पार्श्वों और पक्षों का विस्तृत विश्लेषण किया और अपना निश्चित मत प्रस्तुत किया कि हिन्दुस्थान के करोड़ों हिन्दुओं के हित में यही होगा कि भारत का दो भागों में बँटवारा करके एक भाग मुस्लिम पाकिस्तान और दूसरा गैर-मुस्लिम हिन्दुस्थान बना दिया जाये। उनके अनुसार पाकिस्तान बनाने की योजना लागू न होने की स्थिति में हिन्दुओं को दो गम्भीर दुष्परिणाम भुगतने पड़ेंगे।

१) भारत की सुरक्षा संकट में रहेगी,

२) देश में साम्प्रदायिक वैमनस्य की समस्या गम्भीर बनी रहेगी।

भारत की सुरक्षा का प्रश्न

स्वतन्त्र अविभाजित भारत का देश की प्रतिरक्षा-तैयारियों पर क्या प्रभाव पड़ता?

डा. अम्बेडकर ने प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारतीय सेना की साम्प्रदायिक मिश्रणयुक्त संरचना के आँकड़ों का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारतीय सेना में मुसलमानों का अंश (भाग) सर्वाधिक था और यह अनुपात स्वतन्त्र अविभाजित भारत में भी बदल नहीं पाता। उन्होंने यह प्रश्न उठाया कि क्या भारतीय सेना के इस मुस्लिम भाग पर उस स्थिति में भारत की रक्षा करने का भरोसा किया जा सकता है, यदि इस पर कोई मुस्लिम देश—जैसे अफगानिस्तान—आक्रमण कर दे? इसके अतिरिक्त उन्होंने एक अन्य बात की ओर ध्यान दिलाया कि सरकार की राजस्व-आय अधिकांश हिन्दू-बहुल प्रान्तों से प्राप्त होती है, जबकि इस आय का बड़ा भाग मुस्लिम-प्रधान भारतीय सेना पर खर्च होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दू लोग अपना धन अपने ही विनाश का साधन तैयार करने के लिए देते रहे हैं।

इस विषय में डा. अम्बेडकर ने लिखा : " . . . .इस बात की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि किसी देश के लिए महत्त्वपूर्ण बात स्वतन्त्रता प्राप्त करना नहीं वरन् उसे अक्षुण्ण बनाये रखने के सुनिश्चित साधन उपलब्ध होना है। किसी देश की स्वतन्त्रता की निर्णायक प्रत्याभूति (गारंटी) उसकी निष्कंटक सेना होती है—एक ऐसी सेना, जिस पर हर समय और हर संकट में देश की रक्षा हेतु लड़ने का भरोसा किया जा सकता है। भारत में आवश्यक रूप से हिन्दुओं और मुसलमानों की मिली-जुली मिश्रित सेना ही होगी। यदि भारत पर विदेशी आक्रमण होता है तो क्या सेना के

मुस्लिम भाग पर देश की रक्षा करने का विश्वास किया जा सकता है? मान लीजिए, आक्रमणकारी भी मुसलमान ही है तो क्या मुसलमान आक्रमणकारियों का साथ देंगे, या उनके विरुद्ध खड़े होकर भारत की रक्षा करेंगे? यह बहुत निर्णायक प्रश्न है। स्पष्टतः इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर है कि सेना में विद्यमान मुसलमानों पर द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त का, जोकि पाकिस्तान-अभियान का आधार है, कितना प्रभाव पड़ा है। यदि उन पर प्रभाव पड़ चुका है, तो भारतीय सेना निष्कंटक नहीं रहेगी। भारत की स्वतन्त्रता की रक्षक होने के बजाय वह स्वयं एक संकट और सम्भावित विपत्ति बनी रहेगी। मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं भौंचक्का रह जाता हूँ जब कुछ अंग्रेज यह तर्क देते हैं कि भारत की रक्षा के कारणों से ही पाकिस्तान बनाने की माँग ठुकराने योग्य है। कुछ हिन्दू भी यही राग अलापते हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि वे या तो यह जानते ही नहीं कि भारत की स्वतन्त्रता का निर्धारक तत्त्व क्या है, या फिर भारत की रक्षा की बात करते समय उनके मस्तिष्क में ऐसे स्वतन्त्र भारत का चित्र नहीं होता जो अपनी रक्षा के लिए स्वयं उत्तरदायी है, बल्कि एक ब्रिटिश स्वामित्व वाले क्षेत्र का होता है जिसकी बाहरी आक्रमणों से रक्षा भी अंग्रेजों का ही दायित्व होगा। यह सर्वतः त्रुटिपूर्ण दृष्टिकोण है। प्रश्न यह नहीं कि विभाजन न होने पर क्या ब्रिटेन भारत की अधिक अच्छी रक्षा कर सकता है। प्रश्न यह है कि क्या भारतवासी स्वतन्त्र भारत की रक्षा कर पायेंगे? इसका उत्तर, मैं फिर से कहता हूँ, केवल एक ही है कि भारतवासी (अविभाजित) स्वतन्त्र भारत की रक्षा केवल एक ही शर्त पर कर पायेंगे कि भारतीय सेना अराजनीतिक और पाकिस्तान के विषय से अछूती रहे। सेना के प्रश्न को प्रसंग से बाहर रखकर स्वराज्य के प्रश्न पर चर्चा करने की जो मूर्खतापूर्ण आदत देश में फैल गयी है, उसके विरुद्ध मैं भारतवासियों को चेतावनी देना चाहता हूँ। राजनीतिक भावनाओं से ग्रस्त सेना देश की स्वतन्त्रता के लिए सबसे बड़ा खतरा है, इस बात को समझने में असफलता से बढ़कर घातक कुछ और नहीं हो सकता। ऐसी सेना का होना, सेना के न होने से भी बुरा है।

इतना ही महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि सेना ही वह निर्णायक शक्ति है, जो विद्रोह या हठी असन्तुष्टों की चुनौती सामने आने पर सरकार के लिए अपनी प्रभुता लागू करना सम्भव करती है। मान लीजिए, सरकार कोई ऐसी नीति बनाती है जिसका घोर विरोध करने वाला मुस्लिम समुदाय का एक वर्ग है। मान लीजिए, इस नीति को लागू करने के लिए सरकार को सेना का प्रयोग करना पड़ता है। क्या सरकार सेना में सम्मिलित मुसलमानों पर विश्वास कर सकती है कि वे मुस्लिम विद्रोहियों पर गोली चला देंगे? यह भी निर्भर इसी बात पर है कि सेना में सम्मिलित मुसलमानों

पर द्वि-राष्ट्रवाद का कितना प्रभाव है। यदि उनमें इसका प्रभाव है तो भारत में निरापद और सुरक्षित सरकार बन नहीं पायेगी।" (पृ. ३६०-६१)

दोनों विश्वयुद्धों के बीच के काल में भारतीय सेना की मिश्रित साम्प्रदायिक रचना के आँकड़ों का ब्यौरा डा. अम्बेडकर ने प्रस्तुत किया। इस मिश्रण के भारत की सुरक्षा तैयारियों पर पड़ने वाले सम्भावित प्रभाव के बारे में उन्होंने निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किये :

" . . . . .इस सर्वेक्षण से दो सुस्पष्ट तथ्य सामने आते हैं। एक तो यह कि आज भी (स्वतन्त्रता-पूर्व) भारतीय सेना अपनी संरचना में मुस्लिम-प्रधान है। दूसरा यह कि इन मुसलमान सैनिकों में भी सबसे अधिक पंजाब और उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के मुसलमान हैं। भारतीय सेना की इस संरचना का अर्थ यह है कि पंजाब और सीमांत प्रदेश के मुसलमान ही विदेशी आक्रमणों से भारत के मुख्य रक्षक बन गये हैं। यह तथ्य इतना स्पष्ट हो गया है कि इन क्षेत्रों के मुसलमानों को अंग्रेजों द्वारा किन्हीं भी कारणों से उन्हें प्रदान की गयी इस गौरवपूर्ण स्थिति का पूरा आभास है, क्योंकि वे प्रायः स्वयं को 'भारत के द्वारपाल' कहते सुने जाते हैं। इसी महत्त्वपूर्ण तथ्य के प्रकाश में, भारत की सुरक्षा की समस्या पर हिन्दुओं को विचार करना चाहिए।

किस सीमा तक हिन्दू भारत की स्वतन्त्रता और स्वाधीनता की रक्षा के लिए इन 'द्वारपालों' पर निर्भर रह सकते हैं? इसका उत्तर इस बात पर निर्भर होगा कि भारतीय सीमा-द्वारों को बलपूर्वक खोलकर घुसने का प्रयत्न करने वाला होगा कौन? स्पष्टतः, (अविभाजित) भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा से आक्रमण होने की सम्भावना दो ही देशों से हो सकती है, वे हैं—अफगानिस्तान और रूस, जिनकी सीमाएं वहाँ भारतीय सीमा का स्पर्श करती हैं। इनमें से भारत पर आक्रमण कौन करेगा और कब? निश्चयपूर्वक कहा नहीं जा सकता। किन्तु यदि आक्रमण रूस का हुआ तो आशा की जा सकती है कि ये (मुस्लिम) 'द्वारपाल' दृढ़ और निष्ठावान् बने रहेंगे और आक्रमणकारी को बाहर ही रोकेंगे। परन्तु, मान लीजिए, अफगानिस्तान, अकेले या अन्य मुस्लिम देशों के साथ मिलकर, भारत पर चढ़ाई कर देता है, तो क्या ये द्वारपाल आक्रमणकारियों को बाहर रोकेंगे या सीमा-द्वार खोलकर उन्हें भीतर आने देंगे? यह ऐसा प्रश्न है जिसकी उपेक्षा कोई भी हिन्दू नहीं कर सकता। इस प्रश्न के बारे में हर हिन्दू का आश्वस्त होना आवश्यक है, क्योंकि यह बहुत ही निर्णायक प्रश्न है।

कहा जा सकता है कि अफगानिस्तान कभी भी भारत पर आक्रमण करने की सोचेगा ही नहीं। परन्तु, किसी भी सिद्धान्त की सही कसौटी यह है कि वह सबसे

खराब स्थिति में खरा उतरता है कि नहीं। सेना के पंजाबी और सीमांती मुसलमानों की विश्वसनीयता और वफादारी की जाँच यही परखने से होगी कि अफगानिस्तान का आक्रमण होने पर उनका आचरण क्या होगा? क्या वे अपनी जन्मभूमि की पुकार सुनेंगे? या अपने मजहब की पुकार से प्रभावित हो जायेंगे? ऐसे प्रश्नों का सामना करके ही भारत के लिए सुनिश्चित सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार के कष्टप्रद और असुविधापूर्ण प्रश्नों से यह सोचकर मुँह मोड़ना खतरे से खाली नहीं कि ब्रिटिश संरक्षण के रहते भारत को विदशी आक्रमण से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। आत्म-संतुष्टि की ऐसी मनोवृत्ति अक्षम्य ही कही जायेगी ....अतएव सेना के पंजाबी और सीमांती मुसलमान अफगानिस्तान द्वारा आक्रमण होने पर कैसा व्यवहार करेंगे, यह प्रश्न कितना ही अप्रिय क्यों न हो, बहुत उपयुक्त और महत्त्वपूर्ण है तथा इस पर विचार होना ही चाहिए।

कुछ लोग शायद कहें कि सेना में मुसलमानों की बहुलता को ऐसी अन्तिम सच्चाई क्यों मान लिया जाये जिसे बदला नहीं जा सकता? जो लोग इस परिवर्तन को ला पाने में स्वयं को सक्षम समझते हैं, वे जैसे प्रयास करना चाहें, करने को आमंत्रित हैं। परन्तु, जितना भी अनुमान लगाया जा सकता है, लगता यही है कि इस स्थिति को बदला नहीं जा सकता। इसके विपरीत, मुझे तो इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं होगा यदि इस स्थिति को बनाये रखने के लिए, इसे मुसलमानों को सुरक्षा देने का आधार बनाकर, नये संविधान में स्थान दे दिया जाये। मुसलमान ऐसी माँग अवश्य ही उठायेंगे, और हिन्दुओं के विरुद्ध तो मुसलमान किसी न किसी प्रकार सफल हो ही जाते हैं।

इसलिए, हमें यह मानकर चलना चाहिए कि भारतीय सेना की रचना में साम्प्रदायिक अनुपात वैसा ही रहेगा, जैसा उसमें आज है। इस आधारभूत बात को बदले बिना उसमें से उत्पन्न होने वाला प्रश्न भी यथावत् रहेगा कि क्या अफगानिस्तान द्वारा आक्रमण की स्थिति में देश की रक्षा करने के लिए हिन्दू ऐसी सेना पर निर्भर रह सकते हैं? इसके उत्तर में 'हाँ' तो केवल तथाकथित 'राष्ट्रवादी' ही कह सकते हैं। यथार्थवादियों में से सबसे साहसियों को भी इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व पर्याप्त सोचना पड़ेगा कि मुसलमान हिन्दुओं को 'काफिर' मानते हैं जो उनकी दृष्टि में वध के योग्य हैं, रक्षा के नहीं। यथार्थवादियों को यह तथ्य भी ध्यान में रखना होगा कि मुसलमान जबकि यूरोपवासियों को अपने से श्रेष्ठ स्वीकार करते हैं, वहीं वे हिन्दुओं को अपने से हेय देखते हैं। सेना की कोई मुस्लिम रेजीमेंट हिन्दू अधिकारियों के अधीनस्थ किये जाने पर उनके सत्ताधिकार को स्वीकार कर लेगी, इसमें सन्देह है।

यथार्थवादियों को इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि मुसलमानों में से भी उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के मुसलमान हिन्दुओं के साथ अपने सम्बन्धों में सबसे अधिक वैमनस्य बनाये हुए हैं। यथार्थवादी को समझना होगा कि पंजाबी मुसलमान पर अन्तरराष्ट्रीय इस्लामवाद के प्रचार का प्रभाव बहुत अधिक होता है। इन सब बातों को ध्यान में रखने पर इसमें सन्देह नहीं रहेगा कि वह कोई बहुत 'साहसी' हिन्दू होगा जो यह कहेगा कि भारत पर मुस्लिम देशों के किसी आक्रमण के समय सेना में सम्मिलित मुसलमान निष्ठावान् (वफादार) बने रहेंगे, और आक्रमणकारी के पक्ष में उनके चले जाने की कोई आशंका नहीं है। . . . . १९१९ में खिलाफत अभियान में लगे हुए हिन्दुस्थानी मुसलमान वास्तव में इस सीमा तक चले गये कि उन्होंने अफगानिस्तान के अमीर के पास जाकर उसे भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दे दिया। इस तथ्य को यदि स्मरण करें तो (मुस्लिम-बहुल सेना की सन्दिग्ध निष्ठा के) उपर्युक्त विचार को और अधिक बल प्राप्त होता है और वह मात्र काल्पनिक बात नहीं रह जाती।

हिन्दुओं के सामने प्रश्न केवल यही नहीं है कि पंजाब और सीमान्त-प्रदेश के मुसलमानों से भरी यह भारतीय सेना अफगान आक्रमण के समय कैसे व्यवहार करेगी। एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर भी हिन्दू विचार करें कि क्या ऐसी सेना को चाहे उसकी निष्ठा जैसी भी हो, अफगान आक्रमण की स्थिति में, भारत सरकार अपनी योजनानुसार आक्रमणकारियों के विरुद्ध प्रयोग करने को स्वतन्त्र होगी? इस संदर्भ में मुस्लिम लीग द्वारा अपनाये गये रुख की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए कि भारतीय सेना का प्रयोग मुस्लिम शक्तियों के विरुद्ध नहीं किया जायेगा। इसमें कुछ भी नया नहीं है। यह सिद्धान्त तो खिलाफत कमेटी ने मुस्लिम लीग से बहुत पहले ही प्रतिपादित कर दिया था। इस संदर्भ में यह प्रश्न भी उठेगा कि इस सिद्धान्त को मुसलमान किस सीमा तक अपनी आस्था ('ईमान') का विषय बनाते हैं। मुस्लिम लीग ब्रिटिश सरकार से इस सिद्धान्त को लागू कराने में सफल नहीं हुई तो इससे यह अर्थ न निकाला जाये कि वह भारतीय सरकार के विरुद्ध भी इसमें सफल नहीं होगी। सम्भावना है कि वह सफल होगी, क्योंकि यह सिद्धान्त हिन्दुओं की दृष्टि से कितना ही देशभक्तिहीन क्यों न हो, मुस्लिम-भावनाओं के लिए सर्वाधिक अंगीकरणीय है और मुस्लिम लीग इसके पक्ष में मुस्लिम समुदाय का समर्थन प्राप्त कर लेगी। अपनी सेनाओं का प्रयोग करने के भारत के अधिकार पर यदि मुस्लिम लीग बन्धन लगाने में सफल हो जाती है तो हिन्दुओं की स्थिति क्या रह जायेगी? इस प्रश्न पर भी हिन्दुओं को विचार करना है।

....एक कठिन निर्णय हिन्दुओं के सम्मुख उपस्थित है—या तो एक निष्कंटक सेना हो (जो कि विभाजन होने से ही होगी), या एक निरापद सीमा-रेखा (जो विभाजन न होने से होगी)। इस कठिन स्थिति में कौन सा मार्ग हिन्दुओं के लिए सर्वोत्तम होगा? क्या उनके लिए ऐसा आग्रह हितकर होगा कि मुस्लिम-भारत अलग न होकर भारत का ही अंग रहे और देश की सीमा निरापद बनी रहे, या उनके हित में यह होगा कि विभाजन हो जाये ताकि भारत को एक निष्कंटक सेना प्राप्त हो सके? इस क्षेत्र के मुसलमान हिन्दुओं के प्रति शत्रु-भाव रखते हैं, इस बात में सन्देह का कोई कारण नहीं है। तो फिर हिन्दुओं के लिए कौन सी स्थिति उत्तम है—मुसलमानों का बाहर रहकर विरोधी बने रहना, या भीतर रहकर विरोधी बने रहना? किसी भी समझदार व्यक्ति से इस प्रश्न का एक ही उत्तर मिलेगा कि यदि मुसलमानों को हिन्दुओं का विरोधी ही बने रहना है तो उनके भीतर रहकर विरोधी बने रहने से तो यही अच्छा है कि वे बाहर रहकर विरोधी रहें। वास्तव में, मुसलमान बाहर रहें, इसी की मन में प्रार्थना करनी चाहिए। इसी एक उपाय से भारतीय सेना को मुस्लिम-प्रधानता से मुक्त किया जा सकता है।

परन्तु, ऐसा किस प्रकार सम्भव होगा? इसके लिए भी मार्ग एक ही है, और वह है पाकिस्तान बनाने की योजना को सहमति प्रदान करना। पाकिस्तान बन जाने से हिन्दुस्थान अपने भरपूर आर्थिक और मानव-साधनों की सहायता से एक ऐसी सेना संगठित कर पायेगा जिसे वह अपनी सेना कह सकेगा और जिसका प्रयोग कैसे हो, किसके विरुद्ध हो, इस बारे में कोई भी अन्य व्यक्ति अपने आदेश उस पर थोप नहीं पायेगा। पाकिस्तान के बनने से हिन्दुस्थान की सुरक्षा दुर्बल पड़ जाने के बजाय असीमतः सुदृढ़ होगी।

हिन्दुओं को अभी आभास नहीं है कि सेना में उनकी संख्या कम होने से वे अपनी सुरक्षा की दृष्टि से कितनी प्रतिकूल स्थिति में हैं। और, इससे भी कहीं कम आभास उन्हें इस बात का है और जो वास्तव में बहुत आश्चर्य की बात है कि वे इस प्रतिकूल स्थिति को बहुत धन देकर खरीद रहे हैं। (प्रस्तावित) पाकिस्तानी क्षेत्र, जोकि वर्तमान भारतीय सेना के लिए सैनिक-भर्ती का प्रमुख स्थान है, केन्द्रीय सरकार की राजस्व-आय में बहुत कम योगदान देता है।.... राजस्व में अधिकांश योगदान हिन्दुस्थान के प्रांतों से आता है।....पाकिस्तानी क्षेत्र तो हिन्दुस्थानी प्रांतों पर एक बोझ हैं।....केन्द्रीय सरकार उन पर बहुत अधिक धन व्यय करती है। केन्द्रीय सरकार की कुल आय १२१ करोड़ रुपये है। इसमें से लगभग ५२ करोड़ रुपये सेना पर खर्च होते हैं।....इन ५२ करोड़ रुपयों का अधिकांश भाग उस मुस्लिम-सेना पर खर्च

होता है जो प्रस्तावित पाकिस्तानी क्षेत्र से भर्ती की गयी होती है। . . . .कितने हिन्दू इस दुःखदायी स्थिति से परिचित हैं? और, कितने समझते हैं कि यह दुःखदायी नाटक किसके मूल्य पर रचा जा रहा है? इस स्थिति के लिए आज हिन्दुओं को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि वे इसको रोक भी नहीं सकते। परन्तु, प्रश्न यह है कि क्या वे इस दारुण स्थिति को आगे भी चलते रहने देंगे? इसे यदि वे रोकना चाहते हैं तो इसे समाप्त करने का सबसे सुनिश्चित मार्ग है पाकिस्तान बनाने की योजना को लागू होने देना। इस योजना का विरोध करने का अर्थ है अपने ही विनाश के अचूक शस्त्र को अपने ही धन से पैना बनाना। एक निष्कंटक सेना निरापद सीमा-रेखा से अधिक श्रेयस्कर है।" (पृ० ८१-८७)

साम्प्रदायिक सद्भाव का प्रश्न

"यह विचारणीय प्रश्न है कि क्या भारत को अखण्ड रखने का आदर्श संघर्ष करने योग्य है? प्रथम बात तो यह है कि भारत अविभाजित रह भी गया तो वह 'एक देह—एक प्राण' वाली इकाई नहीं बन पायेगा। नाम से भले ही भारत एक देश के रूप में जाना जाता रहे, वास्तव में तो उसमें दो देश—हिन्दुस्थान और पाकिस्तान—ही होंगे, जिन्हें एक कृत्रिम और बलपूर्वक थोपी हुई एकता में बाँध दिया गया हो। द्वि-राष्ट्रवाद के प्रभाव के बने रहने तक तो ऐसा होगा ही। . . . . द्वि-राष्ट्रवाद का प्रभाव एकता की थोड़ी सी भावनाश्रित इच्छा के फैलने के लिए भी स्थान नहीं छोड़ेगा। अलगाववाद का यह रोगाणु राष्ट्र के राजनीतिक जीवन में फैल जाने पर जिस प्रकार की मानसिकता पनपेगी, वह किसी दिन इस बलपूर्वक आरोपित एकता को समाप्त करने के लिए जीवन-मरण के भयानक संघर्ष को निमन्त्रित कर देगी। ऐसे विघटन को किसी उच्चतर शक्ति ने रोक भी दिया तो भी एक बात तो अवश्यम्भावी है कि यह थोपी हुई एकता भारत की जीवन-शक्ति को चूसती रहेगी, उसकी समरसता को निष्प्राण करेगी, उसके नागरिकों का देश के प्रति प्रेम और विश्वास कम करेगी, तथा उसके नैतिक और भौतिक संसाधनों के चाहे विकास में न सही, परन्तु उपयोग में बाधा डालेगी। भारत एक निस्तेज और रुग्ण राज्य बन जायेगा . . . ।" (पृ. ३३४-५)

डा. अम्बेडकर के मन में भारत के मुस्लिम समुदाय को द्वि-राष्ट्रवाद की मानसिकता से वापस खींच ला सकने की तथाकथित 'राष्ट्रवादी मुसलमानों' की शक्ति और योग्यता पर बहुत सन्देह था। उन्होंने लिखा :

"साम्प्रदायिक मुसलमानों के, जो कि मुस्लिम लीग के अंग हैं, तथा राष्ट्रवादी

मुसलमानों के बीच कोई वास्तविक अन्तर ढूँढ पाना कठिन है। यह सन्देहपूर्ण है कि राष्ट्रवादी मुसलमानों की कांग्रेस पार्टी के साथ भावनाओं, लक्ष्यों और नीतियों में कोई ऐसी वास्तविक निकटता है जो उन्हें मुस्लिम लीग से भिन्न रंग में प्रकट करती हो। सत्य तो यह है कि अनेक कांग्रेसजन स्वयं ऐसा मानते हैं कि दोनों में कोई अन्तर नहीं है और कांग्रेस के राष्ट्रवादी मुसलमान तो साम्प्रदायिक मुसलमानों की मात्र एक सीमा-चौकी के समान हैं। यह विचार पूर्णतः सच्चाई-रहित भी नहीं है जो इस बात से स्पष्ट है कि राष्ट्रवादी मुसलमानों के नेता डा. अंसारी ने मुसलमानों को अलग निर्वाचक-मंडल प्रदान करने वाले 'कम्युनल अवार्ड' का विरोध करने से इन्कार कर दिया था, यद्यपि कांग्रेस और राष्ट्रवादी मुसलमानों ने इसके विरोध में प्रस्ताव पारित किया था।

मुस्लिम लीग का प्रभाव मुसलमानों में इतना अधिक बढ़ा है कि अनेक मुसलमान, जो लीग के विरोधी थे, अब लीग में सम्मिलित होने या उससे समझौता कर लेने को बाध्य हो गये हैं। दिवंगत सर सिकन्दर हयात खान और बंगाल के दिवंगत प्रधान मंत्री फजलुल हक के आये दिन बदलते रवैये पर जो कोई भी दृष्टि डालेगा, वह उपर्युक्त तथ्य को अवश्य स्वीकार करेगा। (पृ. ४०६-७)

डा. अम्बेडकर स्वतन्त्र भारत में तीव्र साम्प्रदायिक संघर्ष की सम्भावना को नकार नहीं पाते थे, अतः उन्होंने समाधान के रूप में न केवल पाकिस्तान बनाने का समर्थन किया, बल्कि दोनों देशों के बीच जनसंख्या की अदला-बदली का भी समर्थन किया, ताकि दोनों देशों से साम्प्रदायिक वैमनस्य का रोग समाप्त हो जाये। परन्तु, विभाजन के बाद भी भारत में यह समस्या शायद पूर्णतः समाप्त न हो, इस पर उन्होंने लिखाः

"यह स्वीकारते हुए भी कि पाकिस्तान का बनना हिन्दुस्थान की साम्प्रदायिक समस्या का पूर्ण हल नहीं है, क्या इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दुओं को पाकिस्तान की माँग अस्वीकार कर देनी चाहिए?" (पृ. १०४)

'नहीं', उन्होंने दृढ़ता से कहा। पहला कारण यह कि पाकिस्तान बनने से हिन्दू जनसंख्या के अनुपात में मुस्लिम जनसंख्या बहुत कम हो जायेगी। " . . . .लगता यही है कि पाकिस्तान का निर्माण हिन्दुस्थान में साम्प्रदायिक समस्या को चाहे सुलझा न पाये, वह इसके आकार को पर्याप्त घटा अवश्य देगा, और इसे अल्प महत्त्व का बनाकर इसका शान्तिपूर्ण समाधान अधिक सरल कर देगा।" (पृ. १०५)

दूसरा कारण यह है कि पाकिस्तान बनने से संसद् में ससत्सदस्यों के स्थानों का एक बड़ा भाग हिन्दुओं के लिए सुनिश्चित हो जायेगा, जो 'केन्द्र में हिन्दुओं की स्थिति में भारी सुधार लायेगा . . . ' (परन्तु, शायद उस समय तक डा. अम्बेडकर ने यह

नहीं समझा होगा कि थोक मुस्लिम वोट बैंक की विघटनकारी राजनीति का हिन्दू समाज की एकता पर और स्वतन्त्र भारत में 'केन्द्र में हिन्दुओं की स्थिति में भारी सुधार' पर कितना प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा) . . . .पाकिस्तान बनने के इन प्रभावों को देखते हुए यह निर्विवाद लगता है कि यदि पाकिस्तान की निर्मिति हिन्दुस्थान में साम्प्रदायिक समस्या का पूरा समाधान नहीं भी करती, तो भी यह हिन्दुओं को उस विषम स्थिति से मुक्त करती है, जो मुसलमानों के हावी भागीदार के रूप में विद्यमान होने से भारत में बनी रहेगी।" (पृ. १०७)

परिशिष्ट

हिन्दू-एकता की आवश्यकता

कट्टरवादी मुस्लिम शक्तियों ने सदा ही हिन्दू समाज में विद्यमान जातिवाद आदि सामाजिक तनाव के कारणों का लाभ उठाने का प्रयास किया है, और इसीलिए वे इन तनावों को अधिक प्रबल करने के इच्छुक रहते हैं। दूसरी ओर, उदारवादी मुसलमानों ने एक पुनः शक्तिमान् हिन्दू समाज के माध्यम से भारत की प्राचीन राष्ट्रीय परम्परा (विरासत) की तेजपूर्ण अभिव्यक्ति की आवश्यकता को स्वीकारा है। इसी प्रकार, जहाँ एक ओर कट्टरवादी मुसलमानों ने 'धर्म-निरपेक्षता' का अर्थ लगाया—मजहबी पहचान को उस सीमा तक ऊपर उठाने की स्वतन्त्रता कि वह 'धर्म-निरपेक्षता' राष्ट्रवाद की वैरी लगने लगे, वहीं, दूसरी ओर, उदारवादी मुसलमानों ने सम्प्रदाय-निरपेक्षता को हमारी राष्ट्रीय परम्परा के अटूट अंग के रूप में स्वीकारा है, जिसके बाद पान्थिक या मजहबी पहचान का उग्र प्रदर्शन अनावश्यक और अवांछनीय हो जाता है। डा. अम्बेडकर, जिन्हें उदारवादी प्रगतिशील मानवीय मूल्यों में गहरी आस्था थी, हिन्दू समाज में विद्यमान् जातिवाद की प्रथा और मुस्लिम समुदाय में जुनूनी (उन्मादी) कट्टरवाद के वर्चस्व, दोनों के घोर विरोधी थे। वे जातिवाद को हिन्दू समाज में सामाजिक सौहार्द के बिगड़ने का कारण, और मुस्लिम कट्टरवाद को शान्तिप्रिय हिन्दू समाज की सुरक्षा तथा हमारी सभ्यता एवं राजनीतिक व्यवस्था के तीन आधारभूत आदर्शों—राष्ट्रवाद, पंथ-निरपेक्षता और लोकतंत्र—की सुरक्षा के लिए खतरा समझते थे। जीवन-पर्यन्त वे राष्ट्रीय जीवन में फैले इन्हीं रोगों के कारण चिन्तित रहे और उसी के अनुसार अपने विचार रखे।

राजनीतिक दृष्टि से पाकिस्तान बनाने के पक्ष में सम्मति देते हुए भी डा. अम्बेडकर भारत की प्राचीन सांस्कृतिक एवं भौगोलिक एकता के बारे में सदा सचेत रहे, जिसको उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया :

". . . . (पाकिस्तान के) इस प्रश्न पर विचार करते समय यह आधारभूत तथ्य कभी नहीं भूला जाना चाहिए कि प्रकृति ने भारत को एक ही भौगोलिक इकाई का रूप प्रदान किया है। भारतीय तो खैर आपस में लड़ रहे हैं, और कोई नहीं कह सकता कि वे लड़ना कब छोड़ेंगे, पर इससे यह तथ्य दुर्बल नहीं पड़ता कि भारत एक ही भौगोलिक इकाई है। उसकी एकता प्रकृति के समान ही प्राचीन है। युगों-युगों से इस भौगोलिक इकाई के भीतर और इसके समस्त व्याप में सांस्कृतिक एकता विद्यमान

रही है। यह सांस्कृतिक एकता राजनीतिक तथा जातीय मतभेदों से भी अप्रभावित रही है। और, पिछले डेढ़ सौ वर्षों से तो भारत की सभी संस्थाएं—सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, विधिक (कानूनी) और प्रशासनिक—सबकी सब एक ही कार्य-प्रेरणा से चल रही हैं। पाकिस्तान के प्रश्न पर विचार करते समय इस तथ्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता कि भारत की मूलभूत एकता इस चर्चा का निर्धारक तत्त्व न सही, प्रारम्भिक बिंदु अवश्य है। इस बात को समझना आवश्यक है कि विभाजन दो प्रकार का हो सकता है, और उनमें जो अन्तर है वह स्पष्ट रहना चाहिए। एक प्रकार का विभाजन तो वह है जहाँ प्रारम्भिक बिन्दु पहले से विद्यमान अलगाववाद की स्थिति है, और विभाजन तो बस दो ऐसे भागों का अलग हो जाना है जो कभी पहले ही अलग थे, पर बाद में उन्हें मिला दिया गया था। विभाजन के इस प्रकार से बिल्कुल भिन्न एक दूसरा प्रकार भी है, जिसका प्रारम्भिक बिन्दु सदा ही एकता की स्थिति रही है। परिणामस्वरूप, ऐसी स्थिति में विभाजन होना तो एक ऐसे क्षेत्र को कुछ टुकड़ों में विघटित करना होता है जो सदा एक इकाई रहा है। जहाँ प्रारम्भिक बिन्दु प्रादेशिक एकता न हो, अर्थात् जहाँ वर्तमान एकता से पहले अलगाव था, वहाँ विभाजन होना तो मूल स्थिति में वापस पहुँचने जैसा होगा और इससे मानसिक आघात नहीं लगता। परन्तु, भारत के संदर्भ में तो (विभाजन का) प्रारम्भिक बिन्दु प्राचीन एकता है।" (पृ. ३४३-४)

डा. अम्बेडकर का राष्ट्रवादी हृदय हिन्दू समाज में विद्यमान उन विघटनकारी शक्तियों और भावनाओं से अत्यधिक पीड़ित होता था जिनके कारण छोटी-छोटी प्रादेशिक पहचानों के आग्रह अत्यधिक मुखर होकर हमारी राष्ट्रीय पहचान की अभिव्यक्ति को दुर्बल बना देते हैं।

"भारतीयों में आपसी एकता के लिए कोई उत्साह नहीं है, आपसी मेल की कोई कामना नहीं; समान वेशभूषा की, समान भाषा की भी कोई इच्छा नहीं है। जो बातें स्थानीय और लघु पहचान बनाती हैं उन्हें त्यागकर, जो बातें समान और राष्ट्रीय हैं उन्हें अपनाने की कोई इच्छा नहीं। एक गुजराती को गर्व होता है गुजराती होने में, महाराष्ट्रवासी को महाराष्ट्रीय होने में, पंजाब वाले को पंजाबी होने में, मद्रास के व्यक्ति को मद्रासी होने में और बंगालवासी को बंगाली होने में गर्व होता है। ऐसी तो है हिन्दुओं की मानसिकता, जो मुसलमानों पर उनमें राष्ट्रीय भावना का अभाव होने का आरोप उनके यह कहने के कारण लगाते हैं कि 'मैं पहले मुसलमान हूँ, बाद में भारतीय'। क्या कोई कह सकता है कि समस्त भारत में कहीं भी, हिन्दुओं तक में, ऐसी कोई सहजवृत्ति या मनोभाव विद्यमान है जो उनकी घोषणा—'मैं भारत का

(या की) नागरिक हूँ' के पीछे किसी भावुकता के दर्शन करा दे? अथवा क्या उनमें नैतिक और सामाजिक एकता की थोड़ी सी भी चेतना विद्यमान है जो स्थानीय और लघु का परित्याग कर, जो कुछ साझा और एकता निर्मित करने वाला है,उसे अपनाने की इच्छा उनमें उत्पन्न करे? न ऐसी कोई चेतना है और न ही ऐसी कोई इच्छा। बिना ऐसी चेतना और इच्छा के, एकता-निर्माण के लिए सरकार पर निर्भर होना अपने आपको धोखा देना है।" (पृ० १७६)

डा. अम्बेडकर ने राष्ट्रीय एकता में अपनी गहरी निष्ठा के कारण ही स्वातन्त्र्य-पूर्व काल में भाषाई प्रान्तों के निर्माण की कड़ी आलोचना की थी। उन्होंने लिखा :

"....इस निर्णय में ....क्षेत्रफल, जनसंख्या या राजस्व-आय जैसे विचारणीय तत्त्वों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इस सम्भावना पर भी कोई विचार नहीं किया गया कि यह निर्णय (भाषाई प्रान्तों का निर्माण) भारतीय सामाजिक जीवन के पहले ही से ढीले-ढाले ढाँचे में कोई विघटनकारी तत्त्व तो नहीं रोपित कर देगा।" (पृ० ६)

डा. अम्बेडकर अनुभव करते थे कि हिन्दू समाज को सामाजिक बुराइयों से मुक्त करने की तथा उसके विद्वेषियों के आक्रमणों से उसकी रक्षा करने के लिए हिन्दुओं को संगठित करने की गहरी आवश्यकता है। उनके जीवनी-लेखक स्वर्गीय श्री सी. बी. खैरमोड़े ने डा. अम्बेडकर के शब्दों को उद्धृत किया है :

"....मुझमें और सावरकर में इस प्रश्न पर न केवल सहमति है बल्कि सहयोग भी है कि हिन्दू समाज को एकजुट और संगठित किया जाये, और हिन्दू धर्म को अन्य मजहबों के आक्रमणों से आत्म-रक्षा के लिए तैयार किया जाये।" (ब्लिट्ज, १५ मई, १९९३ में उद्धृत)

डा. अम्बेडकर हिन्दू समाज की बिगड़ चुकी वर्ण-व्यवस्था के विरोधी थे और अपनी भावनाओं की तीव्रता को व्यक्त करने के लिए उन्होंने सन् १९५६ में बौद्ध मत में दीक्षा ली। मुस्लिम और ईसाई संगठनों के अनेक प्रकार से दबाव डालने के उपरान्त भी डा. अम्बेडकर ने बौद्ध मत ही चुना, क्योंकि वे व्यापक हिन्दू-परिवार के भीतर ही बने रहना चाहते थे। जातिवाद और बौद्धमत में दीक्षा के प्रश्नों पर उनकी राष्ट्रवादी भावनाओं की झलक निम्नलिखित पंक्तियों से मिलती हैं :

"पाकिस्तान के विषय में अपनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक (१९४० में) लिखने के केवल चार वर्ष पूर्व डा. अम्बेडकर ने गांधी जी के साथ अपनी पुस्तक 'जाति-प्रथा का नाश' के विषय पर तर्क-वितर्क करते हुए सन् १९३६ में उन्हें स्पष्ट शब्दों में लिखा था: "हिन्दू

समाज को ऐसे धार्मिक आधार पर पुनर्गठित किया जाना चाहिए जो स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव के सिद्धान्तों को मान्यता दे।" इस कथन से यह स्पष्ट है कि डा. अम्बेडकर हिन्दू समाज में सुधार के समर्थक आन्दोलनकारी थे, न कि हिन्दू-विरोधी संघर्षकर्ता। सामाजिक सुधार के इस अभियान में उन्हें हिन्दू धार्मिक नेताओं का अपेक्षित सहयोग प्राप्त नहीं हुआ, और अंत में उन्होंने वैदिकमत के स्थान पर बौद्धमत अपनाया—ये सब तो इतिहास के तथ्य हैं। परन्तु बौद्धमत अपनाने के जो कारण उन्होंने प्रकट किये, उनसे भी इसी विचार को बल मिलता है कि वे हिन्दुत्व-राष्ट्रवादी थे। उन्होंने कहा, "धर्म-परिवर्तन का समस्त राष्ट्र के लिए क्या परिणाम हो सकता है, यह मनन करने योग्य बात है। इस्लाम या ईसाई मत में परिवर्तित हो जाना दलित वर्गों को अराष्ट्रीय (राष्ट्रीय भावनाहीन) बना देगा।"

१३ अक्टूबर १९५६, अर्थात् नागपुर में बौद्धमत में दीक्षा लेने से एक दिन पूर्व डा. अम्बेडकर ने एक संवाददाता-सम्मेलन में बताया कि एक बार उन्होंने गांधी जी को कहा था कि यद्यपि वे उनसे छुआछूत मिटाने के प्रश्न पर मतभेद रखते हैं, परन्तु समय आने पर "मैं वही मार्ग चुनूंगा जो देश के लिए सबसे कम हानिकर हो। और, बौद्धमत में दीक्षित होकर मैं देश को सबसे बड़ा लाभ पहुँचा रहा हूँ, क्योंकि बौद्धमत भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। मैंने सावधानी बरती है कि मेरे पंथ-परिवर्तन से इस देश की संस्कृति और इतिहास को कोई हानि न पहुँचे।" (धनंजय कीर-कृत 'अम्बेडकर : जीवन और लक्ष्य', पृ. ४९८)

(ब्लिट्ज, १५ मई १९९३ में उद्धृत)

हिन्दू समाज के सभी वर्गों में पारस्परिक एकता स्थापित करने की डा. अम्बेडकर की इच्छा उनके उस परामर्श से स्पष्ट है जो उन्होंने अनुसूचित जातियों को दिया, जिसमें उन्होंने समझाया कि वे मुसलमानों से प्रभावित होकर इस्लाम में परिवर्तित न हों।

" . . . . .डा. अम्बेडकर ने अनुभव किया कि हिन्दुओं—विशेषकर निम्न जातीय (उपेक्षित) हिन्दुओं—का बलपूर्वक धर्मान्तरण कराने का, (इतिहास के) मध्यकाल से लेकर देश-विभाजन के बाद तक भी वही नमूना चला आ रहा है। कुछ ही समय पूर्व बने पाकिस्तान में हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाने के समाचार जब भारत पहुँचने लगे तो डा. अम्बेडकर अत्यधिक अशान्त हो उठे। इस सन्दर्भ में उनके प्रशस्ति-प्राप्त जीवनी-लेखक धनंजय कीर ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक में लिखा है :

"उन्होंने (डा. अम्बेडकर ने) पाकिस्तान सरकार की भर्त्सना करते हुए एक वक्तव्य

निर्गत किया—"मैं अनुसूचित जाति के उन लोगों को, जो इस समय पाकिस्तान में फँसे हुए हैं, यह कहना चाहता हूँ कि वे भारत आ जायें। दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि अनुसूचित जाति के लोग, चाहे वे पाकिस्तान में हों या हैदराबाद में, मुसलमानों या मुस्लिम-लीग पर विश्वास न करें, यह उनके लिए घातक होगा। अनुसूचित जाति के लोगों में मुसलमानों को अपना हितैषी मानने की आदत सी बन गयी है, केवल इसलिए कि उनके मनों में हिन्दुओं के प्रति रोष है। यह दृष्टिकोण ठीक नहीं है।" "

(ब्लिट्ज, २४ अप्रैल १९९३ में उद्धृत)

इसमें सन्देह नहीं कि डा. अम्बेडकर की दृढ़ मान्यता थी कि भारत के राष्ट्रीय उत्कर्ष के लिए पुनरुत्थित, शक्तिमान और एकताबद्ध हिन्दू समाज का होना आवश्यक है।

आत्मकेन्द्रित जाति

"मनुष्य जितना स्वार्थी होता है, उतना ही अनैतिक होता है। यही बात जाति के साथ भी है। जो जाति स्वकेन्द्रित हो गयी, वह समस्त संसार में सर्वाधिक दुष्ट एवं अत्याचारी सिद्ध हुई है। संसार में कोई दूसरा सम्प्रदाय नहीं है जो अपने-पराये की इस भावना का इतना अधिक शिकार रहा हो जितना कि अरब के पैगम्बर द्वारा स्थापित मजहब। और कोई दूसरा सम्प्रदाय न होगा जिसने अन्य मतावलम्बियों पर इतने अधिक अत्याचार किये हों और रक्तपात किया हो। कुरान में यह आदेश दिया गया है कि जो इन उपदेशों को नहीं मानते, उनका कत्ल कर देना चाहिए; उनकी हत्या करना उन पर दया करना है। और सुन्दर हूरों तथा सब प्रकार के ऐशो-आराम से परिपूर्ण जन्नत (स्वर्ग) को पाने का निश्चित मार्ग एक ही है और वह है इन काफिरों को मार डालना। ऐसे विश्वासों के फलस्वरूप जो भीषण रक्तपात हुआ है उसकी कल्पना तो करो।"

—स्वामी विवेकानन्द (लन्दन में दिये भाषण का अंश)

अलगाववादी मुस्लिम प्रवृत्ति

"भारत का नया राष्ट्र किसी भी प्रकार की विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों को सहन नहीं करेगा। यदि फिर वही मार्ग अपनाया जाना है जिसके कारण देश का विभाजन हुआ, तो जो लोग पुनः विभाजन करना चाहते हैं और फूट के बीज बोना चाहते हैं उनके लिए यहाँ कोई स्थान नहीं होगा, कोई कोना नहीं होगा। . . . . किन्तु मैं अब देखता हूँ कि उन्हीं युक्तियों को फिर अपनाया जा रहा है जो उस समय अपनायी गयी थीं जब देश में पृथक् निर्वाचक-मण्डलों की पद्धति लागू की गयी थी। मुस्लिम लीग के वक्ताओं की वाणी में प्रचुर मिठास होने पर भी अपनाये गये उपाय में विष की भरपूर मात्रा है। सबसे बाद के वक्ता (श्री नजीरुद्दीन अहमद) ने कहा है: "यदि हम छोटे भाई का संशोधन स्वीकार नहीं करेंगे तो हम उसके प्यार को गँवा देंगे।" मैं उसका प्यार गँवाने के लिए तैयार हूँ, अन्यथा बड़े भाई की मृत्यु हो सकती है। आपको अपनी प्रवृत्ति में परिवर्तन करना चाहिए, स्वयं को बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल ढालना चाहिए। यह बहाना बनाने से काम नहीं चलेगा कि "हमारा तो आपसे घना प्यार है।" हमने आपका प्यार देख लिया है। अब इसकी चर्चा छोड़िए। आइए, हम वास्तविकताओं का सामना करें। प्रश्न यह है कि आप वास्तव में हमसे सहयोग करना चाहते हैं या तोड़-फोड़ की चालें चलना चाहते हैं। मैं आपसे हृदय-परिवर्तन का अनुरोध करता हूँ। कोरी बातों से काम नहीं चलेगा; उससे कोई लाभ नहीं होगा। आप अपनी प्रवृत्ति पर फिर से विचार करें। यदि आप सोचते हैं कि उससे आपको लाभ होगा तो आप भूल कर रहे हैं . . . मेरा आपसे अनुरोध है कि बीती को बिसार दें, आगे की सुध लें। आपको मनचाही वस्तु मिल गयी है। और स्मरण रखिए, आप ही लोग पाकिस्तान के लिए उत्तरदायी हैं, पाकिस्तान के वासी नहीं। आप लोग आन्दोलन के अगुआ थे। अब आप क्या चाहते हैं? हम नहीं चाहते कि देश का पुनः विभाजन हो।"

—सरदार वल्लभ भाई पटेल (संविधान-सभा में भाषण, दि. २८.८.१९४७)